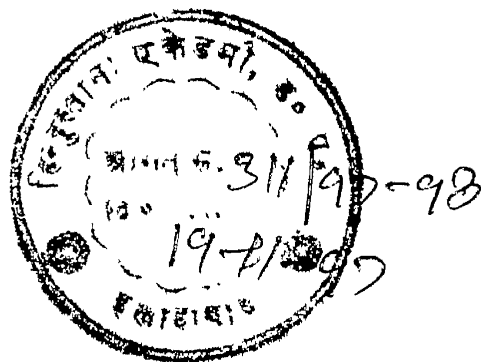
क्रांतिकारी आज़ाद





क्रांतिकारी आज़ाद

मां हमें विदा दो जाते हैं हम
विजयकेतु फहराने आज—
तेरी बलिवेदी पर चढ़कर।

क्रांतिकारी आज़ाद

वे सदा ही कहा करते थे—
"गिरफ्तार होकर अदालत में हाथ बांध बंदरिया का नाच मुझे नहीं नाचना है। आठ गोली पिस्तौल में हैं और आठ का दूसरा मैगजीन है। पन्द्रह दुश्मन पर चलाऊंगा और सोलहवीं यहां!" और वे अपनी पिस्तौल की नली अपनी कनपटी पर छुआ देते हैं।

शानदार ज़िन्दगी
23 जुलाई, 1906

शानदार मौत
27 फरवरी, 1931

क्रांतिकारी आज़ाद

[कथात्मक जीवनी]

शंकर सुल्तानपुरी


साहित्य केन्द्र प्रकाशन
उत्कृष्ट साहित्य के प्रकाशक एवं विक्रेता
ई-५/२०, कृष्ण नगर, दिल्ली-११००५१

प्रकाशक : ओउम्प्रकाश शर्मा
साहित्य केन्द्र प्रकाशन
ई-5/20, कृष्ण नगर, दिल्ली-110051

मूल्य : 60.00

संस्करण : 1995

मुद्रक : शान प्रिन्टर्स, दिल्ली-110032

KRANTIKARI AAZAD by Shankar Sulatanpuri

आज़ाद और नेहरू

आज़ाद मुझसे मिलने के लिए इसलिए तैयार हुआ था कि हमारे जेल से छूट जाने से आमतौर पर आशाएं बंधने लगी थीं कि सरकार और कांग्रेस में कुछ-न-कुछ समझौता होने वाला है। वह जानना चाहता था कि अगर कोई समझौता हो, तो उनके दल के लोगों को कोई शांति मिलेगी या नहीं? क्या उनके साथ तब भी विद्रोहियों जैसा व्यवहार किया जाएगा? जगह-जगह उनका पीछा उसी तरह किया जाएगा··· उनके सिरों के लिए इनाम घोषित होते ही रहेंगे और फांसी का तख्ता हमेशा लटकता ही रहेगा, या उनके शांति के साथ काम-धंधे में लग जाने की भी कोई सम्भावना होगी? उसने कहा कि खुद मेरा तथा मेरे साथियों का यह विश्वास हो चुका है कि आतंकवादी तरीके बिलकुल बेकार हैं, उसमें कोई लाभ नहीं। हां, वह यह मानने को तैयार नहीं था कि शांतिमय साधनों से ही हिन्दुस्तान को आजादी मिल जाएगी। उसने कहा, आगे कभी सशस्त्र लड़ाई का मौका आ सकता है मगर यह आतंकवाद न होगा।

'मुझे आज़ाद से यह सुनकर खुशी हुई थी और बाद में उसका सबूत मिल भी गया कि आतंकवाद पर से उन लोगों का विश्वास हट गया है।···अवश्य ही इसके यह माने नहीं हैं कि पुराने आतंकवादी और उनके नए साथी अहिंसा के हामी बन गए है या ब्रिटिश सरकार के भक्त बन गए हैं। हां, अब वे आतंकवादी भाषा में नहीं सोचते। मुझे

तो ऐसा मालूम होता है, उनमें से बहुतों की मनोवृत्ति निश्चित रूप से फासिस्ट बन गई थी।'

आज़ाद को इस बात का बहुत कलख था कि नेहरूजी ने उन्हें फासिस्ट कहा।

आज़ाद ने नेहरूजी से मुलाकात के बाद जब इस घटना की बात हम लोगों को सुनाई तो उनके होंठ खिन्नता से फड़फड़ा रहे थे और उन्होंने कहा था—'साला हमें फासिस्ट कहता है···।'

आज़ाद का अभिप्राय गाली देने का नहीं था। बचपन की संगत के प्रभाव से कुछ शब्द उनकी जबान में तकियाकलाम के रूप में चढ़ गए थे। गम्भीरता या क्रोध में गाली कभी नहीं देते थे।

सिंहावलोकन, पृष्ठ 68 —यशपाल

आज़ाद हैं आज़ाद ही रहेंगे

जब उत्तरी भारत की पुलिस चन्द्रशेखर आज़ाद के नाम से ही कम्पित हो उठती थी, एक दिन हम में से एक साथी ने उनसे कह दिया, 'भैया! आप तो मोटे होते जा रहे हैं। सरकार को आपकी कलाई के लिए शायद कोई विशेष हथकड़ी तैयार करनी पड़े।'

इतना कहना था कि भैया का चेहरा लाल हो गया। उन्होंने तमक कर उत्तर दिया—'आज़ाद की कलाई में अब हथकड़ी लगाना बिलकुल असम्भव है। एक बार सरकार लगा चुकी, अब तो शरीर के टुकड़े-टुकड़े हो जाएंगे, लेकिन जीवित रहते पुलिस बन्दी नहीं बना सकती।'[1]

उनके व्यक्तित्व, त्याग, लगन और चरित्र ने हरएक व्यक्ति को प्रभावित किया, जो उनके संपर्क में एक बार भी आ गया। यह सच है

1. 'मेरी कहानी' पं० जवाहरलाल नेहरू, आठवां हिन्दी संस्करण, पृष्ठ 269

कि वे हर छोटे-मोटे क्रान्तिकारी पर विश्वास कर लेते थे जिसकी वजह से उन्हें कई बार मुसीबतों का सामना करना पड़ा और अन्त में विश्वास-घात के ही कारण उन्हें अपने प्राणों का उत्सर्ग करना पड़ा ।

वे अनुशासन को पूरी तरह से मानने वाले थे। उनके अनुशासन का स्तर इतना ऊंचा था कि प्रायः साथियों को बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता था ।

उनका चरित्र दहकते अंगारे के समान ज्योतिर्मय और शुभ्र ज्योत्स्ना के समान उज्ज्वल था ।

स्त्री जाति का वे बड़ा सम्मान करते थे । उन दिनों एक अंग्रेज सम्पादक क्रांतिकारियों के विरुद्ध बहुत लिखा करता था। इस पर एक साथी ने कहा कि उस सम्पादक को गोली मार दी जाएगी । उसने एक योजना भी पेश की कि वह सम्पादक सपत्नीक अमुक समय पर मोटर में गुजरता है, उसको खत्म कर दिया जाए ।

इस पर भैया क्रुद्ध होकर बोले—'स्त्रियों और बच्चों पर हाथ उठाया, क्या यही क्रांतिकारी का धर्म है?' साथी चुप रह गया और अपनी भूल स्वीकार की ।

पार्टी में उनका आदेश था कि कोई भी व्यक्ति स्त्री को बुरी नज़र से नहीं देख सकता, वरना वह आज़ाद की पहली गोली का शिकार बनेगा ।

जहां उनमें कठोरता थी, वहां कोमलता भी थी। उनका रहन-सहन सादा था। खाना तो बिलकुल रूखा-सूखा पसन्द करते थे। उन्हें खिचड़ी बहुत पसन्द थी, क्योंकि इसमें कम-से-कम खटपट पड़ती थी। सोते साथियों को जगाकर वे योजनाओं पर विचार करने लगते थे ।

मैंने कभी-कभी उनसे शिकायत की तो मुझे ताना दिया करते थे कि यह नमक सत्याग्रह नहीं है कि झण्डा उठाया, नारे लगाए और जेल चले गए। ये क्रान्तिकारियों की योजनाएं हैं, इन पर काफी विचार करना पड़ता है ।

जनता का पैसा वह धरोहर समझते थे। अपने ऊपर कभी उन्होंने

पांच पैसा भी खर्च नहीं किए। वे हमेशा तीसरे दर्जे में सफर किया करते थे। जब उनसे कहा गया कि खतरे से बचने के लिए वे दूसरे दर्जे में सफर किया करें तो उन्होंने कहा था—'जनता आज विश्वास करती है कि आज़ाद पैसा बर्बाद नहीं करेगा। कल हम दूसरे दर्जे में चलेंगे और जनता देखेगी तो उनका विश्वास उठ जाएगा।'

'वे नहीं चाहते थे कि पार्टी का एक भी सदस्य सिनेमा आदि खेल-तमाशा देखे, क्योंकि इस प्रकार जनता के धन का दुरुपयोग होता है। वे अपने पास एक या दो जोड़ी से अधिक कपड़े नहीं रखते थे। भैया मोटे तो थे ही, इसलिए वे लालाजी की शक्ल बनाकर प्रायः चलते थे। उनकी बुद्धि बड़ी तीव्र थी, जिसकी वजह से पुलिस के गुप्तचर भी भय खाते थे।

एक बार भैया कानपुर स्टेशन पर उतरे। वहां पर एक मशहूर गुप्तचर मौजूद था जिसने भैया को देख लिया। हम लोगों ने सोचा कि आंख बचाकर निकल सकें तो अच्छा है, लेकिन यह सम्भव नहीं था। उसी समय भैया को नई सूझ सूझी। वे सीधे उस गुप्तचर के पास पहुंचे और कन्धे पर हाथ रखकर बोले—'देखो फिजूल की बात मत करो। तुम अपना काम करो और मैं अपना।'

बेचारा गुप्तचर बुत की तरह वहां खड़ा ही रहा और भैया उस की साइकिल पर सवार हो नौ-दो-ग्यारह हो गए।

'पांचजन्य' से
साभार

—दीदी सुशीला
(आज़ाद की सहधर्मिणी)

भय्या आज़ाद : अन्तरंग झलकियां

क्रान्तिकारी डकैती में न तो स्त्रियों पर हाथ उठाते थे, न उनके शरीर के गहने छीनते थे। ऐसे ही अवसर पर एक ठकुराइन अपनी सन्दूक पर जमकर बैठ गई।

आज़ाद ने उससे कहा—'अम्मा ! एक तरफ हट जाओ ।'

ठकुराइन के बात न मानने पर भी आज़ाद ने उस पर न चोट की और न धक्का देकर हटाया ।

चतुर ठकुराइन ने इन लोगों को जाते देख आज़ाद की कलाई पकड़ ली । आज़ाद भद्रता के विचार से उससे जोर-जबर्दस्ती न कर मुंह ताकते खड़े रह गए । जब सब साथी बाहर आ गए तो रामप्रसाद बिस्मिल ने आज़ाद को न पाकर भीतर देखा । आज़ाद भद्रता के नाते बुढ़िया के कैदी बने खड़े हुए थे ।

बिस्मिल ने ठकुराइन की कलाई पर ज़ोर से हाथ मारकर उन्हें छुड़ाकर डांटा—'अच्छे गधे बन रहे थे । तुम मरवाओगे सबको ।' तब कहीं उनको मुक्ति मिली ।

मैं किसी समय आज़ाद से मज़ाक करने लगता—'भैया ! घबराते क्यों हो ! कांग्रेस और अंग्रेज सरकार का समझौता हो जाएगा तो फिर हमें फरार होने की जरूरत नहीं होगी । तुम्हारा नाम खूब प्रसिद्ध हो चुका है । कांग्रेसी इतना तो सोचेंगे कि तुम थानेदार की पगड़ी और वर्दी में खूब जंचोगे । तुम्हें थानेदारी मिल ही जाएगी ।'

आज़ाद को इस बात की चिढ़ आती कि मैं उन्हें केवल थानेदारी के ही लायक समझता हूं । क्रोध दिखाते—'चल साले ! तू बड़ा अफलातून है । तू क्या बन जाएगा ?'

मैं मजाक जारी रखता —'तुम थानेदार बनोगे तो हम लोगों की सिफारिश नहीं करोगे ? मैं कम-से-कम हैड कांस्टेबल बनूंगा ।'

सिंहावलोकन, पृष्ठ 60-63 —यशपाल

वे गत दस वर्षों से साम्राज्यवाद के विरुद्ध अथक युद्ध अजीब-अजीब परिस्थितियों में, कहना चाहिए बिलकुल प्रतिकूल परिस्थितियों में करते आ रहे थे । गत आठ सालों से उन्होंने क्रांति का मार्ग अपना रखा था और खूब अपना रखा था । किसी विपत्ति के सामने भी यह रणबांकुरा पीछे नहीं हटा था । यह तो उसके स्वभाव के विरुद्ध था, न

उसने कभी जी चुराया था। विपत्ति उसके लिए ऐसी थी जैसे हंस के लिए पानी। गत् साढ़े छ: सालों यानि 26 सितम्बर 1925 से वह फरार थे, गत 17 सितम्बर, 1928 यानि सैण्डर्स हत्याकांड के दिन से फांसी का फन्दा उनके लिए तैयार था। फिर तो न मालूम कितनी फांसियों और कालेपानियों के हकदार वे हो गये।

भारतीय क्रांतिकारी आंदोलन
का इतिहास, पृष्ठ 305 —मन्मथनाथ गुप्त

हंसी-हंसी में

उस समय दिल्ली में चूड़ी-आन्दोलन जोर-शोर से चल रहा था। माता और बहनें हाथ में चूड़ी लिये वे खासकर चांदनी चौक, घण्टाघर के पास घूमा करती थीं।

जो कोई मिलता, उससे कहतीं कि आप अब चूड़ी पहनकर घर में बैठिए और हम स्त्रियां देश की स्वतन्त्रता के लिये काम करेंगी।

ऐसे ही एक अवसर पर आज़ाद उस ओर से गुजरे तो एक लड़की से उनका हाथ पकड़कर कहा—'ठहरो! मैं तुम्हें चूड़ियां पहनाऊंगी।'

'क्यों?' आज़ाद ने अचरज से पूछा।

लड़की बोली—'तुम लोग देश को स्वतन्त्र करने के लिए कोई काम नहीं कर रहे हो, इसलिए चूड़ियां पहन कर घर में बैठो और हम देश को स्वतन्त्र कराने के लिए बाहर निकलती है।'

'अगर तुम्हारा कहना ठीक है तो लो बहन!' कहकर आजाद ने अपनी कलाई आगे बढ़ा दी।

उस लड़की ने आज़ाद की कलाई मे चूड़ी पिन्हाने की चेष्टा की।

एक, दो, तीन···बड़ी और बड़ी, और बडी। कोई दस-बारह चूड़ियां नाप डालीं उसने। मगर आज़ाद की कलाई में कोई चूड़ी आने से रही।

तब उसने हैरानी से आज़ाद के चेहरे पर देखा।

आज़ाद ने सहज भाव से मुस्कराते हुए कहा—'मेरे लिए विशेष चूड़ियां बनवा कर लाओ तब पिन्हा सकोगी।'

झेंपकर वह लड़की आगे बढ़ गई।

एक रात आज़ाद कहने लगे—'सोहन (यशपाल) तुमने और टुइयां (प्रकाशवती, मिसेज यशपाल) ने अच्छा किया कि साथी बन गये। जीवन में हर हालत का साथ तो स्त्री-पुरुष में ही जम सकता है। मैं अगर सोचूं भी तो ऐसी स्त्री है कहां? दीदी (सुशीला) को ही देखो, मरगिल्ला-सा जिस्म है। दिमाग ही को कोई लेकर क्या करेगा! अलबत्ता भाभी है कुछ, पर वह भी नहीं···। मैं तो ऐसी स्त्री से शादी करना चाहती हूं कि कांग्रेस वाले अंग्रेजों से समझौता कर भी लें तो हम सरहद पार चले जायें। दोनों के कंधों पर रायफलें हों और एक-एक बोरी कारतूस।

'जहां घिर जाएं, वह रायफल भर-भरकर देती जाए और मैं दन-दनादन चलाता जाऊं।'

'बस इसी तरह समाप्त हो जायें।'

शानदार जिन्दगी : शानदार मौत

आज़ाद का जन्म घोर विपन्नता के बीच हुआ था। उनके माता-पिता बहुत निर्धन थे। ऐसे कितने ही अवसर आए जब दोनों को, दोनों समय पेट-भर भोजन और तन ढकने के लिए आवश्यक वस्त्र मिलना भी कठिन था। आज़ाद इस स्थिति से अवगत थे। पार्टी के हजारों रुपये भी उनके पास रहते थे। लेकिन क्या मजाल कि उसमें से एक पैसा भी इधर-से-उधर हो जाए। बल्कि एक बार कुछ लोगों ने सहायतार्थ कुछ दिया तो उन्होंने उसे भी पार्टी में लगा दिया। जब साथियों ने पूछा

तब उन्होंने यही कहा—'माता-पिता के जीवन की अपेक्षा पार्टी का अस्तित्व अधिक महत्त्वपूर्ण है और पार्टी की अस्तित्व-रक्षा के लिए उसे ही पहले धन चाहिए।'

आजाद एक ऐसे नेता थे जो प्रत्येक संकट के समय खुद आगे रहते थे।

आजाद को यह चिन्ता न थी कि इतिहास में उनका नाम आए या उन्हें कोई बड़ी ख्याति मिले।

वे सच्चे अर्थों में निष्काम कर्मयोगी के अनुयायी थे।

एक बार भगतसिंह ने उनसे पूछा—'पण्डितजी, इतना तो बता दीजिए कि आपका घर कहां है और वहां कौन-कौन है ताकि भविष्य में हम उनकी आवश्यकता पड़ने पर सहायता कर सकें तथा देशवासियों को एक शहीद का ठीक से पता चल सके।'

इस पर आज़ाद बहुत बिगड़ पड़े थे। उन्होंने साफ कह दिया था—'इतिहास में मुझे अपना नाम नहीं लिखवाना है और न परिवार वालों को किसी की सहायता चाहिए।'

उन्हें मौत और जिन्दगी दोनों शानदार मिलीं।

साप्ताहिक हिन्दुस्तान
23 फरवरी, 1964 !! —लल्लनप्रसाद व्यास

लगेंगे हर दिवस मेले

यूनिवर्सिटी की विशाल घड़ी की टनटनाहट जैसे ही रात के बारह का आखिरी घण्टा बजाकर चुप होती है वैसे ही यह चमत्कारी घटना आरम्भ हो जाती है।

म्योर सैन्टर कालेज के बीच से होकर कम्पनी बाग जाने वाली सुनसान, कंकरीली सड़क पर एक आकृति धीरे-धीरे गुनगुनाती और लठिया ठुकठुकाती हुई बढ़ती जाती है।

किसी कवि ने कहा है—

शहीदों की चिताओं पर जुड़ेंगे हर बरस मेले,
वतन पर मिटने वालों का यही बाकी निशां होगा।

किन्तु हर बरस मात्र क्यों ?

पर हर दिवस क्यों नहीं ?

जो देश की आजादी के लिए हंसते-हंसते फांसी पर झूल गये, सड़ासड़ बेंत खाते रहे, मगर उनके मुख से भारतमाता की जय-जयकार होती रही।

जिन्होंने अपने खेलने-खाने के दिन, जंगलों और गली-कूचों में आज़ादी की अलख जगाने में कुर्बान कर दिये और सच्चे अर्थों मे जिनके लहू से स्वतन्त्रता की होली खेली गई है, क्या उनकी समाधि पर वर्ष में एक बार ही मेला लगना चाहिए !

और इसका जवाब देगी आपको यह सत्तर वर्षीय इलाहाबादी बुढ़िया।

चारों ओर घना अंधेरा है। सारा शहर सोया है, मगर बुढ़िया को भिनसार हो गया।

पुलिया से होती हुई वह कम्पनी बाग (एलफ्रेड पार्क) की कंकरीली पगडण्डी पर चलती जाती है। बाएं हाथ में एक पिटारी और दाहिने हाथ में लठिया लिये इस तरह हंफरती और गुनगुनाती जाती है, मानो कोई भगतिन गंगा-स्नान को जा रही हो।

'अरे बेवकूफो—शहीदों की चिताओं पर लगेंगे हर दिवस मेले।' हर दिवस मेला लगाकर भी तुम उनके उपकार का बदला नहीं चुका सकते। बुद्धि मारी गई कांग्रेस सरकार की। यह धरती भैया के खून से सींची गई है। यह उनके बलिदान का पावन स्थान है। मगर नाम है 'एलफ्रेड पार्क' हुंह बेशरमो ! तुम्हें आज़ाद पार्क कहते लाज क्यों आती है !'

और यह ठीक उसी स्थान पर जाकर ठहर जाती है। यहां पर 27 फरवरी, 1931 को आज़ाद ने वीर गति पाई थी। अब यहां वह

पेड़ नहीं है जिसकी आड़ से आज़ाद ने पुलिस अधिकारियों के जबड़े चूर किए थे, छटी का दूध याद दिलाया था। बुढ़िया की पिटारी में इस स्थान की मिट्टी भरी है। आज़ाद के बलिदान और शहादत की पुण्य रज।

वह इस स्थान पर सिज़दा पढ़ती है। दो क्षण आंखें बन्द कर कुछ कहती है, फिर धीरे-धीरे आज़ाद की प्रतिमा की ओर चल देती है।

पिटारी खोलकर छोटा-सा घी का दीपक निकालती है। उसे जलाकर आज़ाद की आरती करती है, फिर चुटकी-भर मिट्टी प्रतिमा पर छिड़कती हुई कहती है—'भैया! मुझे तुम्हारा यह स्मारक पसन्द नहीं है। चन्दा इकट्ठा होने दो, ऐसा स्मारक बनाऊंगी··· ऐसा कि···।'

आज़ाद और इलाहाबाद!

आज़ाद की शानदार शहादत का गवाह!

इलाहाबाद!

प्रत्येक दृष्टि से उत्तर प्रदेश का सर्वाधिक चर्चित और महत्त्वपूर्ण नगर।

साधु-संतों का तीर्थ-स्थान, राजनीतिज्ञों का गढ़, क्रांतिकारियों का बसेरा और साहित्यकारों की तपोभूमि।

इसी नगर का एक ख़ास और पुराना मुहल्ला है कटरा।

ज्यादातर खपरैल वाले, पुराने किस्म के छोटे-बड़े और गली-कूँचों वाला मुहल्ला। बहुत व्यस्त और भीड़ तथा घुटन भरा-सा। अधिकतर मध्यम वर्ग के नौकरी-पेशों, छोटे-मोटे व्यापारियों, वकीलों, मास्टरों और गरीब मजदूरों की बस्ती।

एक छोर से स्व० प्रधानमंत्री नेहरूजी के निवास-स्थान से जुड़ा हुआ है।

और इसी मुहल्ले के 'मनमोहक पार्क' के आस-पास एक गली में इस 'इलाहाबादी बुढ़िया' लक्ष्मी दीदी का एक पुराना गिरा-पड़ा-सा जर्जर मकान है।

और इसी मकान में कभी भारत के महान् क्रांतिकारियों का गुप्त डेरा था।

लोग-बाग लक्ष्मी दीदी को चिढ़ाने की गरज से चुहल करते हैं, 'तुम्हारे मरने के दिन करीब आए हैं लक्ष्मी दीदी ! क्या यह खण्डहर छाती पर लादकर ले जाओगी ? अरे ! किसी गरीब को दान कर दो।'

और लक्ष्मी दीदी उर्फ इलाहाबादी बुढ़िया के तन-बदन में आग लग जाती है। वह आँखें फाड़कर चिड़चिड़ा पड़ती है—'काहे को दान कर दूं, किसी के बाप का साजा है ?'

'ऐ भले मानसो शरम खाओ ! यह हमारा मन्दिर है, इसमें भैया आज़ाद महीनों रहे थे। इसके चप्पे-चप्पे में उनकी याद की गंध बसी है। हम इसमें भैया का 'स्मारक' बनवायेंगे—लाओ देते हो तुम भी चन्दा !' और वह अपने हाथ का टीन का गुल्लक आगे बढ़ा देती है।

कुछ लोग चकरा जाते हैं, कुछ दो-चार पैसे डाल देते हैं। क्या बुढ़िया सच कहती है ?

आज़ाद कभी इस सड़े-गले खण्डहर में रहे होंगे ? मगर जो कोई बड़ी सहानुभूति से 'लक्ष्मी दीदी' को उनके आज़ाद भैया का 'स्मारक' बनवाने के लिए एकदम रुपया देकर उससे उनकी रोमांचकारी कहानी पूछने लगता है तो लक्ष्मी दीदी एकदम गम्भीर हो जाती हैं, उनके नथुने फड़कने लगते हैं।

और यह किस्सा यों शुरू करती है—'पण्डित सीताराम तिवारी थे तो बहुत गरीब ही, मगर बेटा ऐसा पैदा किया कि सारी दुनिया में नाम कमा गया।

'क्या कहने हैं भैया आज़ाद के ?'

ईंट का जवाब पत्थर से

भाईजी ने अपना मौजर पिस्तौल सावधानी के साथ खोंस लिया,

गोलियों की दो भरी हुई मैगजीनें जेब में ठूंस लीं और साथी का कंधा थपक कर बोले—

'बलवन्त वक्त हो गया।'

बलवन्त ने भी अपना पिस्तौल संभाला और एक सांस लेकर उठ पड़ा।

दोनों साइकिलों पर सवार हुए और बड़ी सतर्कता के साथ डी० ए० वी० कालेज (लाहौर) की ओर चल पड़े।

दोपहरी झुक रही थी।

जयगोपाल पुलिस दफ्तर के फाटक से होकर आने वाली सड़क पर खड़ा था। वह अपनी चैन उतरी साइकिल में इस तरह व्यस्त था, मानो चैन चढ़ा रहा हो, मगर उसकी दृष्टि रह-रहकर पुलिस दफ्तर के अहाते में चली जाती थी।

पुलिस दफ्तर के अहाते में एक लाल मोटर साइकिल खड़ी थी, जयगोपाल उसी के चालू होने के इन्तजार में था। एक और गठे शरीर का कसरती नौजवान उस सड़क पर किसी खास मौके की इन्तजार में चहलकदमी कर रहा था।

दोनों डी० ए० वी० कालेज के पास साइकिल से उतर गये। सामने ही दफ्तर था। साइकिलें ठिकाने से रख दी गईं।

'ठीक है, तुम अपनी राह लो।' भाईजी ने बलवन्त को सचेत किया और स्वयं डी० ए० वी० कालेज के अहाते की ओर बढ़ गये। वहां जंगले की तरफ जा खड़े हुए।

बलवन्त धीरे-धीरे पुलिस दफ्तर की सड़क पर बढ़ा और वहां पहले से चहलकदमी करते हुए साथी से जा मिला। दोनों ने आंखों की भाषा में बात की और भावी कार्यक्रम के लिए सजग हो गये।

लाल मोटर साइकिल भरभरायी। जयगोपाल के कान सजग हो गये।

उसने डिप्टी पुलिस सुपरिटेंडेंट जे० पी० सांडर्स को उस मोटर-साइकिल पर बाहर की ओर जाते देखा और निकट के साथियों को

संकेत दिया।

बलवन्त और राजगुरु फाटक की ओर लपके। सांडर्स धीरे-धीरे फाटक तक आ गया और तभी लपक कर राजगुरु ने धाय किया। गोली उसके सिर के पास लगी। हल्की चीख-पुकार के साथ साडर्स मोटर साइकिल सहित धराशायी हो गया।

बलवन्त सिंह भी क्यों चूकता ? सांडर्स को बिल्कुल ही शांत कर देने के लिए उसने उसके सिर और कंधे पर चार-पाच फायर और किये।

सांडर्स के गिरते ही पुलिस-दफ्तर के बरामदे में खड़ा एक सिपाही चिल्ला पड़ा और दफ्तर में मौजूद अधिकारी हड़बड़ा कर बाहर निकले।

सांडर्स को लहूलुहान छोड़कर दोनों डी० ए० वी० कालेज के अहाते की ओर लपके।

ट्रैफिक इंस्पैक्टर फर्न और दो-तीन सिपाही उन दोनों के पीछे दौड़ पड़े।

बलवन्त (भगतसिंह) ने मुड़कर उस पर गोली चलाई। फर्न बाल-बाल बच गया और मुँह के बल गिर पड़ा।

दूसरे सिपाहियों को सांप सूंघ गया।

तब तक भाईजी ने हांक लगाई—'चलो···।'

बलवन्त और राजगुरु तेज रफ्तार से आगे निकल गये। भाईजी पीछे से आने वाले पुलिस आक्रमणकारियों से मोर्चा लेने के लिए वहीं जम गये।

हैड कांस्टेबल चन्दनसिंह गालियां देते हुए बलवन्त और राजगुरु की ओर झपटा। उसके पीछे दो-तीन सिपाही दौड़े। भाईजी ने अपना मौजर पिस्तौल तानकर चेतावनी दी—'खबरदार ! पीछे हटो !'

साथ के सिपाही ठिठक गये, मगर जवांमर्दी के नशे में चन्दनसिंह झपटता रहा।

भाईजी ने घोड़ा दबा दिया—धांय !

और चन्दनसिंह एक ही गोली में औंधा हो गया।

भाईजी साथियों का अनुसरण करते हुए डी० ए० वी० कालेज का अहाता पार कर बोर्डिंग हाउस में चले गये।

बलवन्त कन्नी काटकर नौ-दो ग्यारह हो गया और भाईजी राजगुरु को अपनी साइकिल पर बिठाकर खरामा-खरामा अड्डे पहुंच गये।

और लाहौर ही क्या, संपूर्ण देश में इस घटना से सनसनी फैल गई। राष्ट्रीय अखबारों में सुर्खियां चमक उठीं—'लाला लाजपत की मृत्यु का बदला।'

'ईंट का जवाब पत्थर से।'

और इसके दूसरे दिन ही इस हत्याकांड के आशय और उद्देश्य के सम्बन्ध में दल की ओर से लाल पर्चे बांटे गये।

(हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातन्त्र सेना)

नोटिश

नौकरशाही सावधान

जे० पी० सांडर्स की मृत्यु से लाला लाजपतराय जी की हत्या का बदला ले लिया गया।

यह सोचकर कितना दुःख होता है कि जे० पी० सांडर्स जैसे एक मामूली पुलिस आफीसर के कमीने हाथों देश की तीस करोड़ जनता द्वारा सम्मानित एक नेता पर हमला करके उनके प्राण ले लिए गए। राष्ट्र का अपमान, हिन्दुस्तानी नवयुवकों और मर्दों को एक चुनौती थी।

आज संसार ने देख लिया है कि हिन्दुस्तान की जनता निष्प्राण नहीं हो गई है। उसका खून जम नहीं गया, वे अपने राष्ट्र के सम्मान के लिए प्राणों की बाजी लगा सकते हैं और यह प्रांण देश के उन नवयुवकों ने दिया है, जिनकी स्वयं इस देश के नेता निन्दा और अपमान करते हैं।

अत्याचारी सरकार सावधान !

इस देश की दलित और पीड़ित जनता को ठेस मत लगाओ। अपनी शैतानी हरकतें बन्द करो। हमें हथियार न रखने देने के लिए बनाए

तुम्हारे सब कानूनों और चौकसी के बावजूद पिस्तौल और रिवाल्वर इस देश की जनता के हाथ में आते ही रहेंगे। यदि यह हथियार सशस्त्र क्रांति के लिए पर्याप्त न भी हुए, तो भी राष्ट्रीय अपमान का बदला लेते रहने के लिए तो काफी रहेंगे ही।...विदेशी सरकार चाहे हमारा कितना भी दमन कर ले, परन्तु हम राष्ट्रीय सम्मान की रक्षा करने और विदेशी अत्याचारियों को सबक सिखाने के लिए सदा तत्पर रहेंगे। हम सब विरोध और दमन के बावजूद क्रांति की पुकार को बुलन्द रखेंगे और फांसी के तख्तों से भी पुकारते रहेंगे।

इन्कलाब जिन्दाबाद !

हमें एक आदमी की हत्या करने का खेद है, परन्तु यह आदमी उस निर्दयी, नीच और अन्यायपूर्ण व्यवस्था का अंग था जिसे समाप्त कर देना आवश्यक है। इस आदमी की हत्या हिन्दुस्तान में ब्रिटिश शासन के कारिन्दे के रूप में की गई है। यह सरकार संसार की सब से अत्याचारी सरकार है।

मनुष्य का रक्त बहाने के लिए हमें खेद है, परन्तु क्रान्ति के स्थण्डिल पर रक्त बहाना अनिवार्य हो जाता है। हमारा उद्देश्य ऐसी क्रान्ति से है जो मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण का अन्त कर देगी।

इन्कलाब जिन्दाबाद !

18 दिसम्बर, 1928 ह० बलराज

सेनापति, पंजाब, हिसप्रस'[1]

और ये 'भाईजी' थे, हिन्दुस्तानी समाजवादी प्रजातन्त्र सेना के कमाण्डर इन चीफ पं० चन्द्रशेखर आजाद!

---

1. 'सिंहावलोकन,' श्री यशपाल, पृष्ट 161-62

उस झोंपड़ी में : क्रान्ति का मसीहा

पण्डित सीताराम तिवारी।

कट्टर सनातनधर्मी ब्राह्मण ! नेम-धर्म और दीन-ईमान के पक्के मगर स्वभाव में किसी प्रकार का पण्डिताऊपन नहीं। बहुत स्वाभिमान और धर्मनिष्ठ। घोर गरीबी में दिन बिताये, मगर क्या मजाल जो नाक पर मक्खी बैठ जाए। तिवारीजी का पैतृक घर उत्तर-प्रदेश के कानपुर जिले में पड़ता था, मगर बचपन और यौवन के कुछ दिन उन्नाव के बदरका गांव में बीते।

यहीं ब्याह रचाया, मगर घर बसाने के साथ ही पत्नी की विदाई के सिलसिले में ससुराल वालों से कुछ कहा-सुनी हो गई।

तिवारीजी झुकना क्या जानें ? पत्नी को सदा-सर्वदा के लिए त्याग दिया। दूसरे विवाह का प्रस्ताव आया और आनन-फानन में संपन्न हो गया, लेकिन दूसरी पत्नी भी अधिक दिन जीवित न रही।

फिर भी तिवारी जी हताश न हुए।

तीसरा विवाह चन्द्रमनखेरा में किया। इस पत्नी का नाम था जगरानी देवी। यह अन्य पत्नियों की अपेक्षा भाग्यशाली थी। पाच बच्चों को जन्म दिया और अन्त तक जीवित रही।

संवत् 1956 के अकाल में तिवारी जी बदरका छोड़ने को विवश हो गए।

उन दिनों उनके एक संबंधी श्री हजारीलाल अलीराजपुर में निवास करते थे। उन्हीं के सहारे तिवारी जी भी अलीराजपुर आ पहुंचे।

हजारीलाल जी के सहयोग से उन्हें जंगल विभाग में नौकरी भी मिल गई।

मगर उद्दण्ड आदिवासियों का यह क्षेत्र उन्हें अपने उपयुक्त न लगा।

आदिवासियों के उत्पात ने मन खिन्न कर दिया।

कट्टर स्वाभिमानी ब्राह्मण और कम पढ़े-लिखे। धर्म-ईमान के

पुजारी जरूर थे, मगर गरीबी ने स्वभाव में कटुता भर दी थी।

उन्होंने जंगल विभाग की नौकरी छोड़ दी और अलीराजपुर के अन्तर्गत भांवरा गांव में आ बसे। यहां पर गाय-भैंस पालकर स्वतन्त्र रूप से दूध दही का व्यापार आरम्भ किया, मगर अन्ततोगत्वा उसमें भी हानि रही।

भांवरा, अलीराजपुर रियासत के अन्तर्गत आता था, परन्तु स्वतन्त्रता के बाद यह मध्य प्रदेश के झाबुआ जिले में आ गया।

यह गांव पहाड़ियों के बीच सुरम्य घाटी में बसा है। निकट ही एक छोटी-सी नदी भी बहती है। आदिवासियों का गांव से निकट का सम्बन्ध है।

तिवारी जी को यह गांव भा गया और वे सदा-सर्वदा के लिए यहीं बस गए।

भरण-पोषण की समस्या पुनः उठ खड़ी हुई। पत्नी जगरानी देवी भी अपने ज्येष्ठ पुत्र सुखदेव को गोद में लेकर बदरका से भांवरा आ पहुंची थी।

बमुश्किल तमाम रियासत में एक बगीचे की रखवाली का काम मिला। वेतन आठ-दस रुपये महीने था। बड़े सन्तोष के साथ पण्डित सीताराम नौकरी में जुट गए। बगीचे के पास ही रहने के लिए एक झोंपड़ा खड़ा कर लिया।

बात में प्रभाव था, स्वभाव में धार्मिकता, व्यवहार में मानवतावादी विचारधारा।

फलस्वरूप गांव वालों को उनके प्रति श्रद्धा हुई। लोगों ने उन्हें अपना मुखिया चुना। वक्त जरूरत पर उनके राय-मशविरे से लाभ उठाया।

और सन् 1906 के आस-पास[1] एक दिन सहसा ही पं० सीताराम का झोंपड़ा चहक उठा। ईश्वर की अनुकम्पा से तिवारीजी को पुत्र-लाभ

1. 23 जुलाई, 1906 आजाद की जन्म-तिथि।

हुआ।

मां जगरानी देवी को मानो गूलर का फूल मिल गया। इससे पहले बेचारी तीन बच्चों की मृत्यु का आघात पा चुकी थी। यह बच्चा पांचवां था।

बड़ी सावधानी और देखभाल के साथ बच्चे का लालन-पालन करने लगी। गरीबी के कारण दिल खोलकर उत्सव भी न मना सकी।

मगर सुन्दर होते हुए भी वह बच्चा बहुत ही दुर्बल था।

जगरानी को सदा उसके स्वास्थ्य की चिन्ता सताती रहती। इतना पैसा न था कि बच्चे का स्वास्थ्य सुधारने के लिए अलग से दूध और पौष्टिक पदार्थों का इन्तजाम किया जा सके।

तो भी क्षमता भर प्रयत्न करती रहती। उसे अपने हृदय के टुकड़े से अकथनीय प्यार था। क्षण-भर को भी उसे आंखों से ओझल न होने देती।

बच्चे का स्वास्थ्य संभलने लगा। घुटनों के वल चलने से लेकर पांच-छह की डेहरी पर पहुंचने तक तो वह अत्यन्त सुन्दर, तेजस्वी और हृष्ट-पुष्ट दीखने लगा।

पास-पड़ोस की औरतें जगरानी को सचेत करती—'कहीं इसे नजर न लग जाए।'

बात सही थी। वह ऐसा था कि उसे नजर लग सकती थी। फिर गांव तो नजर और टोने-टोटके के केन्द्र माने जाते हैं।

मां को आशंका हुई। बच्चे को नजर से बचाए रखने के लिए वह उसके माथे पर दिठौना लगा देती।

नामकरण के समय पुरोहित महाराज ने बुद्धि से काम लिया। बच्चे के रूप, गुण के अनुरूप उसका नाम चन्द्रशेखर रखा।

बालक चन्द्रशेखर अब बाहर अन्य बच्चों के साथ खेलने, ऊधम, मचाने और दौड़-भाग में हिस्सा लेने के योग्य हो गया था।

साथियों की टोली मे वह सबमे आगे रहता। वह मां-बाप की आंखों का तारा था, परन्तु पिता से उनकी नही पटती थी। वे बहुत

रूखे और उग्र स्वभाव के थे। चन्द्रशेखर उनसे डरता और कतराता था।

मां अपने लाड़ले की हर इच्छा पूरी करने को तत्पर रहती। कभी-कभी पति की नजर बचाकर उसका मन रखती, मगर तिवारी जी को इतना लाड़-प्यार पसन्द न था।

वे पत्नी पर बिगड़ते—'तुम लाड़-प्यार में बच्चे को बिगाड़ रही हो।'

चन्द्रशेखर पिता की डांट सुनकर मां की छाती में दुबक जाता। मां उसके लिए 'ढाल' का काम करती थी। पिता क्या जानते थे कि उनकी झोंपड़ी में क्रान्ति का मसीहा उत्पन्न हुआ है।

वे भयानक खेल

शेखर कहीं से रोशनी वाली दियासलाई लाया था। वह उनकी तीलियां जलाता और उनकी लौ को कौतूहल से देखता।

उसके कई साथी पास ही खड़े यह खेल देख रहे थे। किसी की समझ में यह खेल नहीं आ रहा था।

'जब एक तीली जलाने से इतनी रोशनी होती है, तब सारी तीलियां एक साथ जलाई जाएं तो कितनी रोशनी होगी?' चन्द्रशेखर ने साथियों से कहा।

मगर एक साथ सारी तीलियों को जलाए कौन? किसी की हिम्मत न पड़ती थी।

'देखो मैं जलाता हूं।' कहकर स्वयं चन्द्रशेखर ने सारी तीलियां एक साथ जलाई।

तीलियां भर्र से जल उठी, तेज रोशनी हुई मगर साथ ही चन्द्र-शेखर का हाथ भी झुलस गया। मगर उसे जलन का अहसास ही न हुआ। वह लापरवाही से हंसता रहा।

मित्रगण अचरज से उसके चेहरे को देखते रहे और कुछेक दवा-पट्टी के लिए दौड़े।

और इससे भी भयानक खेल था बारूद की तोप दबाने का। एक तोप की शक्ल का खिलौना होता था, इसमें देशी बारूद भरकर दबाने पर जोर की आवाज होती थी।

चन्द्रशेखर को यह खेल बहुत प्रिय था, मगर इसके लिए रोज-रोज पैसे कहां मिलते?

थोड़ी-सी आय में मां भी कहां तक कतर-ब्योंत करके बेटे का हौसला पूरा करती?

और तब अपनी इच्छा पूरी करने के लिए उसे एक उपाय सूझा।

जिस बगीचे की, उसके पिता रखवाली करते थे, उस पर वह अपना अधिकार समझता था। फिर उसमें से कुछ फल तोड़कर बेच लेने में उसे कुछ अपराध नहीं लगता।

उसने ऐसा ही किया। बगीचे से कुछ फल तोड़कर बाजार में बेच लिए और तोप दगाने के लिए बारूद खरीद लाया।

और जब फल तोड़कर बेचने की बात पण्डित सीताराम तिवारी को मालूम हुई तो उनके क्रोध का अन्त न रहा।

कहां वे इतने ईमानदारी और कर्त्तव्यनिष्ठ, कि बिना मालिक की अनुमति के किसी को बगीचे में घुसने न दे, कहां स्वयं उनके बेटे ने बगीचे में चोरी की।

उन्होंने दुलारे बेटे पर तनिक भी रहम नहीं किया और उस पर पिल पड़े।

जितना पीट सके, पीटा।

मां ने बीच में आकर अपने लाड़ले को बचाना चाहा तो उसे धक्का देकर पीछे हटा दिया और चन्द्रशेखर को पीटते-पीटते अधमरा कर दिया।

यह पिता के हाथों की पहली और अन्तिम मार थी, मगर किशोर

अवस्था में परिपक्वता की सीढ़ियों पर कदम रखते हुए चन्द्रशेखर के पिता का यह दण्ड एक चुनौती भी थी।

चुनौती इस रूप में कि मार खाना उनके स्वभाव के विरुद्ध था, यह स्थिति उसके लिए असहनीय थी।

दोनों भाई सुखदेव और चन्द्रशेखर पढ़ने के योग्य हो रहे थे। तिवारीजी के एक आत्मीय पण्डित मनोहरलाल त्रिवेदी ने यह काम अपने जिम्मे ले लिया।

सुखदेव और शेखर उनसे पढ़ने बैठे। विद्याभ्यास का क्रम चल पड़ा। त्रिवेदीजी पढ़ाने में बेंत का भी प्रयोग कर लेते थे।

एक दिन वे कोई शब्द गलत बता गए, फिर उसे सुधारने को कहा। सुखदेव ने तो ठीक कर लिया, परन्तु शेखर ने ठीक करने की बजाय बेंत उठाया और अपने अध्यापक को दो बेंत जड़ दिए।

तिवारीजी समीप ही बैठे थे। गुस्से में शेखर को मारने उठे, किन्तु मनोहरलाल ने बीच में ही पकड़ लिया।

'तूने हाथ उठाने की हिम्मत कैसे की?' तिवारीजी ने शेखर से पूछा।

शेखर ने निर्भीकतापूर्वक जवाब दिया—'हमारी गलती पर ये मुझे और मेरे भाई को मारते हैं, इसलिए जब इन्होंने गलती की तो मैंने इन्हें मार दिया।'

यह उत्तर सुनकर तिवारी जी सन्न रह गए।

घर से पलायन

जैसे-तैसे पढ़ाई चल रही थी, मगर शेखर का मन नहीं लग रहा था। तिवारीजी चाहते थे कि बेटा संस्कृत पढ़कर वेद-ज्ञाता और विद्वान बने, मगर शेखर के दिमाग में तो कुछ और ही 'फितूर' था।

घर से स्कूल के बहाने, दोस्तों की टोली के साथ वह जंगलों में

निकल जाता और वहां डाकू-थानेदार के खेल खेले जाते। आदि-वासियों के साथ तीर चलाने का अभ्यास करने में उसे बड़ा आनन्द आता।

जाति से वह ब्राह्मण था, मगर उसकी धमनियों में क्षत्रिय लहू हुंकार मार रहा था। तीर-कमान और बन्दूकों से खेलना उसे बहुत भाता था।

लेकिन वह यह भी अनुभव करता था कि पिता उससे और ही आशा रखते हैं और इसलिए वह घरेलू बन्धन तोड़कर कहीं उड़ जाना चाहता था।

वह घर से निकल भागने की ताक में था।

कक्षा चार में पहुंचते-ही-पहुंचते यह इच्छा और भी बलवती हो उठी।

शेखर के परिवार के शुभचिन्तक श्री मनोहरलाल जी ने समझ लिया कि शेखर की रुचि पढ़ाई में नहीं है। शेखर के प्रति उनमें अगाध स्नेह था और वे उसका भविष्य संवारना चाहते थे।

उन्होंने शेखर को नौकरी में लगाने का विचार किया। उन्होंने सोचा – 'नौकरी में लगने से आज़ाद का बेकार घूमना छूट जाएगा और परिवार की कुछ आर्थिक सहायता भी हो जाएगी।'

उनके प्रयत्न और तिवारीजी की सच्चाई और ईमानदारी की धाक से शेखर को अलीराजपुर तहसील में एक साधारण नौकरी मिल गई।

शेखर ने नौकरी शुरू कर दी, मगर नौकरी-चाकरी उसके स्वभाव के विरुद्ध थी।

किसी की हां-हज़ूरी और कदमपोशी उसके स्वाभिमान के विरुद्ध थी, जबकि तब के ब्रिटिश शासन काल में यह निहायत जरूरी थी।

अपने क्रान्तिकारी जीवन में साथियों को अपनी नौकरी के संस्मरण सुनाते हुए शेखर कहते—'वहां जो कुछ काम था, सो तो था ही, मुझे सबसे बड़ा दुःख इस बात का होता था कि जो भी अफसर आता उसे

झुक कर मुजरा करना पड़ता था। यह मुझे अच्छा नहीं लगता था। एक-दो बार तो मैंने यह कष्टप्रद कर्तव्य किसी तरह निभाया, परन्तु बाद में मैं ऐसे मौकों पर खिसक जाता ।'

शेखर के मित्र कहते—'शेखर तुम्हारी यह बात अच्छी नहीं, किसी दिन तुम नौकरी से हाथ धो बैठोगे ।'

इस पर शेखर लापरवाही से हंसते हुए कहते—'भाई मुझे ऐसी नौकरी नहीं चाहिए। कल छूटनी हो तो आज छूट जाए। इस जेलखाने से छुट्टी तो मिलेगी। मैं स्वयं छुटकारा पाने की ताक में हूं ।'

और नौकरी का नाम-भर था, अन्यथा वह जंगलों में घूमता-फिरता तालाब के किनारे जा बैठता और घण्टों ऐसे एकान्त में जाने क्या-क्या सोचता रहता ।

उसके अन्दर एक अजीब-सी चिन्गारी सुलग रही थी। उस चिन्गारी में स्वच्छन्दता, निर्भीकता, स्वाभिमान और उग्रता का भाव था ।

और धीरे-धीरे वह चिन्गारी शोले का रूप धारण करती जा रही थी। पंडिताऊपन और धर्म-भीरुता के विरुद्ध उसके हृदय में तूफान उठ रहा था। वह पारिवारिक और संकुचित जीवन-सीमाओं को तोड़कर स्वतन्त्र जीवन बिताने का स्वप्न देख रहा था ।

गोली-बन्दूक से खेलने वाली प्रकृति उसे सामान्य बालक से भिन्न बना रही थी। घर से कहीं भाग जाने का विचार निरन्तर दृढ़ होता जा रहा था।

वह तालाब के किनारे बैठा-बैठा सोचा करता—'यह भी कोई जीवन है ? पिता का कड़ा बन्धन, अनुशासन, दूसरे की गुलामी। गांव तक सिमटी हुई घिसी-पिटी जिन्दगी। क्या सारा संसार यहीं तक है ? सारा ज्ञान, सारे क्रिया-कलाप और देश यही तक सीमित है ?'

देश-देशान्तर के प्रति जिज्ञासा, उन्हें देखने की उत्सुकता और वहां विचरण करने की भावना बलवती हो उठी।

और 'जो रोगी को भाए, वही वैद्य बताए' की युक्ति शेखर के लिए सत्य चरितार्थ हुई ।

घर से भागकर किसी विशाल शहर में स्वतन्त्र जीवन बिताने की आकांक्षा को नया बल मिला।

अलीराजपुर में एक मोतियां बेचने वाला नवयुवक आया करता था। बहुत ही चलतापुर्जा और मिलनसार।

शेखर की उससे दोस्ती हो गई। जब भी अवकाश मिलता शेखर उसके डेरे पर जा पहुंचता और दोनों में खूब बातें होतीं।

वह शेखर की इच्छा ताड़ गया था और उन्हें बम्बई की आकर्षक रोचक कहानियां सुनाया करता।

'वहां रहने का इन्तजाम हो जाएगा ?' शेखर उत्सुकता से पूछता।

'बिलकुल !' मोतियों वाला उत्तर देता—'बहुत बड़ा शहर है बम्बई। लाखों आदमी रहते हैं।'

'और नौकरी ?'

'इतने काम-धन्धे हैं कि आदमी ढूंढ़े भी नहीं मिलते।' उसने बताया।

शेखर ने घर से भाग जाने का आखिरी फैसला किया।

और एक दिन बिना किसी को कहे-बताए वह मोती वाले के साथ चम्पत हो गया।

मां बहुत रोई और तिवारीजी को गहरा आघात लगा।

मगर बेटा हाथ से निकल चुका था।

शेखर बम्बई में

बम्बई, भांवरा से निकट पड़ता है और सीधे गाड़ी जाती है। बम्बई के प्रति शेखर का आकर्षण भी था।

शोर-शराप और भीड़-भरे विशाल प्लेटफार्म पर उतरते ही वह चकित रह गया। किसी महानगरी में आने का यह उनका प्रथम अव-सर था।

खोया-खोया-सा वह स्टेशन के बाहर आया।

महानगरी बम्बई।

विशालकाय इमारतें, दौड़ती-भागती ट्रामें···मोटरें और कारें··· अन्तहीन जनसमूह···लम्बी-चौड़ी सड़कें···कोलाहल···चमक-दमक और भागा-भागी।

वह आंखें फाड़े कौतूहल से देखता रहा। मोती वाला उससे विलग हो चुका था और अब वह अकेला ही इस महानगरी की सड़क नाप रहा था।

वह ध्येयहीन यात्री की भांति सड़क पर बढ़ता रहा।

'क्या करेगा···कहां रहेगा···क्या खाएगा?' इन समस्याओं से निश्चिन्त वह समुद्र-तट पर पहुंच गया।

यहां का वातावरण उसे प्यारा लगा। कुछ थकान भी आ गई थी। तट के समीप ही बैठ गया और आने-जाने वाले जहाजों को देखता रहा।

मगर रोटी की समस्या ने ध्येयहीन नहीं रहने दिया। शेखर को जहाज रंगने वाले रंगसाजों के साथ नौकरी मिल गई। वह उनके सहायक के रूप में काम करने लगा।

जिस गोल के साथ काम मिला, उसी के साथ रहने का इन्तजाम हो गया।

मजदूरों का भोजन सम्मिलित रूप में बनता था, उन लोगों ने शेखर को खाने के लिए बुलाया।

मगर छुआछूत मानने वाला कट्टर ब्राह्मण नवयुवक उनकी रसोई में कैसे खा लेता?

उसने चना-चबैना पर दिन काटना शुरू कर दिया और भविष्य में पैसा इकट्ठा होने पर बर्तन आदि लाकर स्वयं रसोई बनाने का निश्चय किया।

कुछ दिन बाद बर्तन-भांड़े का भी इन्तजाम हो गया, मगर भोजन बनाने का ज्ञान न होने के कारण शेखर से यह झंझट न चल सका।

इस परेशानी ने छुआछूत की रूढ़िग्रस्तता समाप्त कर दी। शेखर एक होटल में खाने लगा।

खाना बनाने का झझट खत्म हुआ तो खाली समय में सिनेमा देखने का सिलसिला शुरू हो गया। शेखर ने जाने कितनी फिल्में देख डाली।

किन्तु शेखर बम्बई महानगरी में भी स्वतन्त्रता, स्वच्छन्दता और मनोवांछित सुख की अनुभूति न कर सका।

'बम्बई में शेखर सप्ताह में एक बार स्नान करते थे। सवेरे पांच बजे उठकर नहाने की सुविधा नहीं थी। पास में कपड़े भी इतने नहीं थे कि नित्य उन्हें धोकर सुखाते और बदलते। इसीलिए वे रविवार को नहाते थे। उस दिन छुट्टी होती थी, इसलिए देर तक सोते रहते। बाद में प्रातःविधि से निवृत्त हो वे नाश्ता करते और उसके बाद घूमते हुए चोर बाजार जाते। वहां एक हाफ पैंट, कमीज खरीद कर साबुन तेल लेते, फिर किसी जनपथ के नल पर बैठकर नहाते। पुराने कपड़े उतार कर फेंकते और उस दिन खरीदे कपड़े पहन लेते। फिर किसी होटल में भोजन करने चल देते। इसके बाद सड़कों के चक्कर, चिड़ियाघर की सैर या पार्क में पेड़ की छांह में विश्राम।'

—श्री विश्वनाथ वैशम्पायन

किन्तु शेखर किसी दुर्व्यसन में नहीं पड़े। बीड़ी-सिगरेट और मांस मदिरा का चस्का उसे नहीं लगा। मजदूर साथियों ने कई बार उसे भी नशे के दलदल में खींचना चाहा परन्तु शेखर पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

उस पर दुर्व्यसनों की छाया तक नहीं पड़ी और एक समय वह आया जब शेखर को बम्बई की आपा-धापी, कोलाहल और मशीनी जिन्दगी ने उकता दिया।

वह बम्बई से भर पाया और यह महानगरी त्यागने को आतुर हो उठा।

और एक दिन होटल से भोजन के पश्चात् उन्होंने सीधे रेलवे

स्टेशन की राह ली। एक सप्ताह की कमाई जेब में थी। बनारस की गाड़ी में बिना टिकट जा बैठे।

रास्ते में कोई पकड़-धकड़ नहीं हुई। सकुशल बनारस स्टेशन पर उतरा।



आज़ादी की आग

बनारस आकर शेखर ने फिर से शिक्षा आरम्भ की। रहने-खाने की दिक्कत नहीं उठानी पड़ी।

उन दिनों काशी में अमीर-धार्मिकों द्वारा निर्धन ब्राह्मण विद्यार्थियों के लिए यह व्यवस्था हो जाती थी।

चन्द्रशेखर ने भी ऐसी ही एक धर्मार्थ संस्था का आश्रय लिया और संस्कृत का अध्ययन आरम्भ कर दिया। लघुकौमुदी और अमर-कोष रट डाले।

मगर पढ़ाई के अलावा राष्ट्र उमंग भी जागृत हो रही थी।

संस्कार से धार्मिक और स्वभाव से सैलानी होने के कारण वह बहुधा गंगा-तट की ओर निकल जाता और घण्टों पानी में तैरता रहता।

रामायण, भागवत और महाभारत से उसे विशेष प्रेम था, फिर काशी में तो जहां-तहां ऐसे सत्संग होते रहते थे। शेखर इन कथाओं में खूब रस लेता। वीर-गाथाओं से उसे अत्यधिक प्रेम था।

अब वह पुस्तकालय में बैठकर अखबार पढ़ने लगा था और राष्ट्रीय हलचल की जानकारी रखने लगा था।

असहयोग आंदोलन की आग बनारस तक पहुंच गई थी। सर्वप्रथम यह आंदोलन संस्कृत कालेज के धरने से आरम्भ हुआ। शेखर भी इस आंदोलन से प्रभावित हुआ।

उसके एकाएक घर से लापता हो जाने की व्यथा में माँ विलख रही थी, पिता भीतर-ही-भीतर तड़प रहे थे। व्यवस्थित हो जाने पर

चन्द्रशेखर ने अपना समाचार दिया और माता-पिता को निश्चिन्त रहने का ढाढ़स बंधाया।

मां को कुछ संतोष हुआ। जब-तब दो-चार रुपये बेटे के खर्च के लिए भेज देती। उसे विश्वास होने लगा था कि बेटा पढ़-लिखकर निकलेगा, कहीं काम-धंधे से लगेगा, तो दिन बदल जायेंगे। पण्डित सीताराम तिवारी भी इसी आशा में गरीबी से जूझ रहे थे।

और सन् 1921 के सविनय अवज्ञा आंदोलन की आंधी आई। एक आग, जो अब तक सुलग रही थी यकायक धधक उठी।

सारे देश में तूफान-सा आ गया।

चारों तरफ अवज्ञा-ही-अवज्ञा होने लगी।

विद्यार्थी ही क्यों पीछे रहते? स्कूल जाने की बजाय वे जलूस निकालने, आंदोलन करने और नारे लगाने में आगे आ गये।

और बनारस में किशोर बालकों के एक ऐसे ही साहसिक कदम का नेतृत्व किया चन्द्रशेखर ने।

वह कितना अद्भुत दिन था।

वह बिना परिणाम की चिन्ता किये, आज़ादी की आग में कूद पड़ा।

जितने बेंत, उतने नारे

इन्कलाब···

ज़िन्दाबाद।

भारत माता की···

जय···।

अंग्रेजो···

भारत छोड़ो।

ऐसे गगन-भेदी नारों से धरती-आकाश कम्पित करता हुआ किशोर

बालकों का जुलूस बनारस नगर की एक मुख्य सड़क से गुजर रहा था।

इस जुलूस में मुश्किल से एक दर्जन लड़के थे और उनकी उम्र तेरह से पन्द्रह वर्ष के बीच थी, परन्तु इनके तेजस्वी आलोकित मुखड़ों पर अदम्य साहस, उमग और दृढ़ता का भाव था। गोरी सरकार के कठोर दमन की चिन्ता किये बगैर ये जय-जयकार करते हुए आगे बढ़ते जा रहे थे।

नन्हे-मुन्नों का नन्हा-सा जुलूस बड़ी निर्भीकता के साथ आगे बढ़ रहा था और लोग-बाग अचरज तथा रोमांच से आंखें फाड़े यह दुस्साहस देख रहे थे।

असहयोग आंदोलन की चिन्गारियां शोलों का रूप धारण कर रही थी। देश के लिए आज़ादी मांगने वालों पर गोरी सरकार की कड़ी नजर थी, मगर आज़ादी के दीवाने सिर पर कफन बांधकर स्वतन्त्रता का अलख जगाने को कटिबद्ध थे।

और किशोर बालकों का यह जुलूस इसी भावना का एक ज्वलंत प्रतीक था।

'और जोर से···।' जुलूस का नेतृत्व करते हुए आगे-आगे चलने वाले पन्द्रह वर्षीय किशोर ने अपने साथियों को हांक लगाई—

'भारत माता की···।'

तीव्र स्वर-समूह गूंजा—'जय···।'

दर्शक आपस में कानाफूंसी कर रहे थे।

कुछ कायरों ने पुलिस के भय से अपने दरवाजे बन्द कर लिये, कुछ भयभीत लोग लुक-छिप कर यह रोमांचकारी दृश्य देखते रहे परन्तु देश के प्रति प्रेम तथा आज़ादी के प्रति आशा रखने वाले कुछ लोगों ने बालकों के उत्साह की प्रशंसा की।

मगर कुछ ब्रिटिश पिट्ठुओं ने टीका की कि इन बेचारों को फुसला कर जुलूस निकलवाया गया है। ये चींटी-मच्छर हाथी का क्या मुकाबला करेंगे? ये बच्चे अंग्रेजी सरकार की तोप-बन्दूको के सामने टिकेंगे?

मगर उन आज़ादी के दीवानों को यह टीका-टिप्पणी सुनने की फुर्सत कहां थी ? वे तो नारे गुंजारते हुए आगे बढ़ते जा रहे थे ।

पकड़े जाएंगे, पिटाई या दण्ड मिलेगा ?

उन्हें इसकी कोई चिन्ता न थी ।

जुलूस, उत्साह, उमंग और ललकार के साथ आगे बढ़ता रहा ।

और इतने में कुत्ते की तरह सूंघती हुई पुलिस टुकड़ी वहां आ पहुंची ।

कुछ बालक तो इधर-उधर तितर-बितर हो गए, परन्तु उनके नेता तथा दो-तीन साहसी साथी नारेबाजी करते रहे ।

पुलिस ने उन्हें घेर लिया। उनकी कोमल कलाइयों में कठोर हथकड़ियां पहना दीं और अदालत की ओर ले चले ।

किन्तु अब भी उनमें भय का नाम नहीं था । भारत माता और महात्मा गांधी की जयकार निरन्तर गतिमान रही ।

'तुम्हारा नाम ?' मजिस्ट्रेट ने बाल-जुलूस का नेतृत्व करने वाले बालक से पूछा ।

'आज़ाद !' तनिक भी भयभीत हुए बिना वह रौबीली आवाज में बोला ।

'पिता का नाम ?' इस बार मजिस्ट्रेट ने उसे ऊपर से नीचे तक घूरते हुए कड़कती आवाज में पूछा ।

'स्वतन्त्र !' उसने वैसी ही मुद्रा में उत्तर दिया ।

उसके ऐसे उत्तर से मजिस्ट्रेट समझ गया कि वह साहसी और उद्दण्ड है और अदालत का अपमान कर रहा है ।

'तुम्हारा घर···?' उसने आग-बबूला होकर पूछा ।

'जेलखाना···!' बालक निर्भीकतापूर्वक बोला ।

मजिस्ट्रेट जल-भुनकर रह गया। यदि बालक 'नाबालिग कोटि' में न आता तो अवश्य ही उसे कठोर कारावास-दण्ड सुना दिया जाता।

परन्तु ब्रिटिश सरकार के खैरख्वाह मजिस्ट्रेट साहब असमर्थ होकर रह गए। खीझकर उन्होंने आज़ादी के दीवाने इस दुस्साहसी बालक को पन्द्रह बेंतों की सजा सुना दी।

और ऐसी कठोर सजा सुनकर भी वह विचलित नहीं हुआ। सजा सुनकर उसने अपनी पूरी शक्ति से भारत माता की जयकार लगाई।

बेंत लगाने के लिए उसे जेलखाने लाया गया। उसके शरीर पर बेंतों की चोट करने से पहले उसके हाथ-पैर बांधे जाने लगे।

'मुझे बांधते क्यों हो?' बाल-विद्रोह छलक पड़ा—'बेंत लगाओ, मैं खड़ा हूं।'

उसके इस वाक्य से सुनने वालों ने दांतों तले उंगली दबा ली; और उसके सुकोमल शरीर पर तड़ातड़ बेंत-वर्षा आरम्भ हो गई।

एक···तड़ाक···।

और इस चोट के साथ ही उसने गर्जना की—'भारत माता की जय···।'

बेंत बरसते रहे और आह-कराह के स्थान पर उसके मुख मे भारत माता और महात्मा गांधी की जय गुंजरित होती रही···बन्दे-मातरम् का उद्घोष होता रहा।

दर्शकों की आंखें कपाल पर चढ़ गईं···लोगों को गश आ गया, देखने वाले चकित और स्तम्भित रह गए।

बेंतों की मार से उसकी देह स्याह पड़ती रही···जहां-तहां चमड़ी उधड़ती रही और ताजे खून के गरम-गरम छींटे टपकते रहे, मगर वह भारत माता की जय और बन्दे मातरम् गुंजाता रहा···।

और अन्तिम बेंत ने कुछ क्षणों को मूच्छित कर दिया।

फिर भी उसने हार नहीं मानी।

उसकी सारी देह चोटों से भरी थी तो भी बिना करुण-कराह के वह उठ खड़ा हुआ और घर की ओर चल पड़ा।

उन दिनों वह बनारस के ज्ञानवापी मुहल्ले में रहता था।

और जब यह दुस्साहसिक घटना नगर-निवासियों को ज्ञात हुई तो

लोग उस निर्भीक, साहसी बालक को देखने के लिए लालायित हो उठे।

और इसी घटना ने उसे 'आजाद' का नामकरण दिया। उसके सार्वजनिक अभिनन्दन की तैयारी की जाने लगी।

'मर्यादा' (सम्पूर्णानन्द द्वारा सम्पादित) में उसकी प्रशंसा पर 'वीर बालक आज़ाद' के नाम से लेख प्रकाशित हुआ।

अभिनन्दन-सभा ठसाठस भरी थी। लोग वीर बालक आज़ाद को देखने को उतावले हो रहे थे।

'महात्मा गांधी और भारत माता की जय' के साथ आज़ाद सभा में उपस्थित हुए।

इतने छोटे थे कि लोगों को दिखाई ही न पड़ते थे। लोगों ने हो-हल्ला मचाना आरम्भ किया।

बालक आज़ाद को अभिनन्दन सभा की मेज पर खड़ा कर दिया गया।

अब वे लोगों को दिखाई पड़ने लगे।

उनके मुख पर तेज और साहस विद्यमान था। देखने वाले मंत्र-मुग्ध से देखते रह गए।

अनगिनत पुष्पमालाओं से उनका गला भर गया। उनका नन्हा-सा शरीर फूलों से ढक गया।

इस अभिनन्दन समारोह में आज़ाद ने अत्यन्त जोशीले स्वर में अपना भाषण दिया।

और दूसरे दिन पत्र-पत्रिकाओं में उनके अदम्य साहस की प्रशंसा करते हुए उनके चित्र प्रकाशित हुए।

सारे बनारस में 'आज़ाद' की धूम मच गई। वह लोगों की आंखों का तारा बन गया।

शायद तभी 'आज़ाद' ने जीवन-भर 'आज़ाद' रहने का संकल्प लेते हुए प्रतिज्ञा की थी—

'आज़ाद की कलाई में अब हथकड़ी लगाना बिलकुल असभव है, एक बार सरकार लगा चुकी। अब तो शरीर के टुकड़े-टुकड़े हो

जाएंगे, लेकिन जीवित रहते पुलिस बन्दी नहीं बना सकती ।'

पता नहीं पण्डित सीताराम तिवारी को अपने बेटे के इस अभूतपूर्व अभिनन्दन पर विस्मय और प्रसन्नता हुई कि नहीं।

मगर जगरानी देवी का हृदय गद्गद हो उठा ।

उनकी कोख धन्य हो उठी ।

क्रान्तिकारी कदम

'वह देखो, वह आज़ाद···वह आज़ाद जो तड़ातड़ बेंतें खाता रहा और भारत माता एवं महात्मा गांधी की जय बोलता रहा।'

काशी विद्यापीठ में प्रवेश लेने के साथ ही वह विद्यार्थियों की चर्चा-प्रशंसा का विषय बन गया।

विद्यार्थीगण उसे श्रद्धा और अचरज की दृष्टि से देखते। उनके लिए वह विलक्षण और विशिष्ट था।

विद्यापीठ के विद्यालय विभाग में उसने नाम तो लिखा लिया मगर अब उनका मन पढ़ने में न लगता था। अब तो हर घड़ी एक धुन सवार रहती कि किस प्रकार अंग्रेजी सरकार से मोर्चा लिया जाए और उसे देश से भगाया जाए।

कोर्स पढ़ने की अपेक्षा वह विप्लवी साहित्य पढ़ने और क्रान्तिकारी संगठन में सम्मिलित होने के लिए अधिक प्रयत्नशील रहता। स्कूल की चारदीवारी में कोर्स की किताबों से चिपकना उसके स्वभाव के विरुद्ध था।

धीरे-धीरे वह अपनी जैसी भावना रखने वाले नवयुवकों से सम्पर्क बनाने लगा।

असहयोग आंदोलन का जोश ठण्डा पड़ रहा था। चौरी-चौरा काण्ड के नाम पर गांधीजी द्वारा आंदोलन स्थगित कर देने की बात नवयुवक आंदोलनों को निराशाजनक लगी।

क्रान्तिकारियों ने साहस नहीं छोड़ा और उत्तर-भारत में अपना संगठन करने के लिए प्रयत्नशील हो गए।

वे क्रान्ति के द्वारा भारत को स्वतन्त्र कराने के पक्ष में थे।

कुछ ही समय पूर्व अण्डमान से छूटकर आए हुए शचीन्द्रनाथ सान्याल क्रान्तिकारी दल की स्थापना कर चुके थे, इसके बाद ही अनुशीलन समिति की स्थापना हुई जिसका नेतृत्व सुरेशचन्द्र भट्टाचार्य कर रहे थे।

इसी अनुशीलन समिति की ओर से बनारस में 'कल्याण आश्रम' की स्थापना हुई जिसका नेतृत्व सर्वप्रथम क्षेत्रसिंह ने किया।

बंगालियों की एक घनी बस्ती में किराए का एक मकान ले लिया गया और 'कल्याण आश्रम' के पीछे क्रान्तिकारी संगठन का विस्तार किया जाने लगा।

अब तक बनारस में शचीन्द्र बाबू का दल अलग काम करता था, परन्तु जब दोनों दलों ने अपने सिद्धांतों, विचारों और उद्देश्यों में साम्य देखा तो एकसूत्र में बंध गये।

और दल का नाम 'हिन्दुस्तानी रिपब्लिक ऐशोसियेशन' रखा। पीले कागज पर इस दल का एक लिखित विधान भी तैयार किया गया।

उद्देश्य के रूप में यह पंक्तियां अंकित की गई—'FEDERATED REPUBLIC OF THE UNITED STATES OF INDIA' अर्थात् भारत के सम्मिलित राज्यों का प्रजातन्त्र संघ।

'यानि ऐसी शासन-प्रणाली स्थापित करना जिसमें प्रांतों को घरेलू विषयों में पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त होगी। प्रत्येक बालिग तथा सही दिमाग वाले व्यक्ति को वोट देने का अधिकार प्राप्त होगा तथा ऐसी समाज पद्धति की स्थापना होगी जिसमें मनुष्य का शोषण न हो सके।'

—मन्मथनाथ गुप्त

बनारस में आंदोलन का नेतृत्व शचीन्द्रनाथ बख्शी, रवीन्द्रमोहन सरकार तथा राजेन्द्र लाहिड़ी ने किया। ये लोग ही दल में आज़ाद को लाए।

शाहजहांपुर में दल का नेतृत्व पं० रामप्रसाद बिस्मिल ने संभाला। इस प्रकार विभिन्न नगरों में नेतृत्व का भार सौंपा गया।

फिर तो दल में सदस्यों की बाढ़-सी आ गई। अशफाक उल्ला, डॉ० रोशनसिंह, मन्मथनाथ गुप्त, रामकृष्ण खत्री, दामोदर सेठ, भूपेन्द्र सान्याल आदि इसी की उपलब्धि थे।

पहले तो आज़ाद एक साधारण सदस्य के रूप में रहे। बाद को अपनी अथक कार्यशक्ति और संगठन के बल पर वे सर्वाधिक चमत्कृत हुए।

दल के लिए नए-नए सदस्य बनाने में आज़ाद की सूझ-बूझ और पकड़ अद्वितीय थी।

वे काफी समय तक किसी नवयुवक को परखते। उसके विचारों, भावनाओं और क्षमता की थाह लेते, तब कहीं जाकर उसे दल का सदस्य बनाते।

विरक्त और उदासीन व्यक्तियों के अन्दर भी आजाद ने क्रान्ति की आग भड़का कर रख दी।

स्वामी गोविन्द प्रकाश (रामकृष्ण खत्री) को वे विरक्ति से क्रांति की ओर खींच लाए।

खत्री के क्रांति-दल में सम्मिलित होने की घटना अत्यन्त रोचक है।

सदस्य बनाने की कला

एक ज्वर पीड़ित और दुर्बल शरीर खाट पर पड़ा था, अपने आप में खोया हुआ।

तभी कमरे में दो नवयुवक प्रविष्ट हुए। एक थे स्वामी उपेन्द्रानन्द ब्रह्मानन्दजी और दूसरा हृष्ट-पुष्ट देह का अत्यन्त आकर्षक और तेजवान दीखने वाला नवयुवक जिसे बीमार युवक नहीं जानता था, उसके सहपाठी ने उसका परिचय दिया तो बीमार ने उठकर अभिवादन

करना चाहा, परन्तु नवयुवक ने उसे बीच में ही रोककर कहा, 'स्वामी जी (बीमार नवयुवक ने संसार से विरक्त होकर संन्यास ले रखा था) आपको बहुत तेज बुखार है, आराम कीजिए। आज से आपकी सुश्रूषा का भार मैं लेता हूं।'

और उसी दिन से वह नवयुवक बीमार स्वामीजी की सेवा में लग गया। वह नियमित रूप से अपने दो-तीन घण्टे उसके पास व्यतीत करता।

बीमार नवयुवक जिसका वास्तविक नाम रामकृष्ण खत्री था, अपने उग्र राष्ट्रवादी विचारों के लिए प्रसिद्ध था और अपनी अथक सेवा-सुश्रूषा करने वाले व्यक्ति का परिचय उसे गांधीजी के भक्त के रूप में दिया गया था।

बीमार स्वस्थ होने लगा और अब अपनी सेवा करने वाले गांधी-भक्त से उसकी राजनैतिक बहस होने लगी।

वह अपनी बहस में गांधीजी का पक्ष लेता जबकि खत्री गांधीजी की नीति से सहमत न थे। खत्री कहते, 'अंग्रेजों को अल्टीमेटम देने के बाद आन्दोलन वापस लेकर गांधीजी ने ठीक नहीं किया।'

नवयुवक उसकी उत्तेजना पर सूखी हंसी हंसकर रह जाता।

और एक दिन जब वह खत्री के पास आया तो खत्री बहुत उद्विग्न से थे, मानो किसी गहरी उधेड़-बुन में पड़े हों।

'क्या बात है, यह बेचैनी क्यों?' नवयुवक ने बड़ी आत्मीयता से पूछा।

और तब खत्री को साफ शब्दों में कहना पड़ा—'मैं क्रान्तिकारी दल में सम्मिलित होने को परेशान हूं।'

नवयुवक पहले तो खिलखिलाकर हंसा, फिर कुछ गम्भीर होकर बोला—'मेरे दो-एक बंगाली मित्र हैं, उनके विषय में सुना है कि वे चुपके-चुपके क्रान्तिकारी दल के संगठन का कार्य कर रहे हैं। उनसे आपको मिलाने की कोशिश करूंगा और मैं तो स्वामीजी आप जानते हैं, गांधी का भक्त हूं।'

इसके आठ-दस दिन बाद वे खत्री से फिर मिले और 'बन्दी जीवन' नामक एक पुस्तक उनके हाथों में देते हुए बोले—'यह पुस्तक एक बंगाली मित्र द्वारा प्राप्त हुई है, शचीन्द्रनाथ सान्याल ने लिखी है। वैसे पढ़ने में बड़ी दिलचस्पी है, फिर भी उनके मार्ग को मैं अच्छा नहीं समझता।'

आगे फिर मिले तो उनके हाथ में सिडीशन-कमेटी रिपोर्ट (रोलट कमेटी की रिपोर्ट थी) इसे देखते ही खत्री झल्ला पड़े—'इसे वही पढ़े जो अंग्रेजों के साथ सहानुभूति रखता हो। क्या अब यह भी काम करने लगे हो?'

नवयुवक मुस्कराते हुआ बोला, 'अरे स्वामीजी इसको पढ़ो तो हो सकता है इसमें हमारे नौजवानों के प्रति अच्छी भाषा का प्रयोग न हो, पर देश के लिए नौजवानों ने जान हथेली पर लेकर कैसे-कैसे बहादुरी के कार्य किए हैं यह जानकारी मिलेगी। इसी कारण मेरे बंगाली मित्र ने आपको पढ़ाने के लिए विशेष आग्रह किया है।'

खत्री ने उसे भी पढ़ा और तब नवयुवक ने उसे गैरी बाल्डी और मैजिनी का जीवन-वृत्तान्त भी पढ़वाया।

और एक दिन खत्री के धैर्य का बांध टूट पड़ा, 'भाई यह तुम्हारा दोस्त कैसा है? जो पढ़ने के लिए पुस्तकें तुम्हारे पास भेज देता है, स्वयं नहीं मिलता। यदि उसे कोई संकोच है तो मुझे स्वयं ले चलकर मिलाओ।'

'समय आने पर वह भी हो जायेगा।' नवयुवक ने कहा, 'आप अपने-आपको तो पक्का करिए। मेरे मित्र का कहना है कि पार्टी में एक बार सदस्य बनने पर फिर वापस आने का रास्ता नही रह जाता। आप मेरी राय मानिए तो आप सीधे-सादे कांग्रेस में ही आकर सत्य और अहिंसा के मार्ग को अपनाइए।'

खत्री ने क्रोध में अंगार होकर कहा, 'देखो गुरु अपनी यह सलाह, प्रार्थना और उपदेश अपने पास रखो। मैंने अपना परिवार त्यागकर साधू जीवन व्यतीत किया, केवल देश का काम करने के लिए। तुम

जानते हो मैं क्या चाहता हूं ? फिर भी तुम मुझे कमजोर दिल का समझते हो ?' खत्री गुस्से में उन्हें और उनके मित्र को जाने क्या-क्या कह गए।

परन्तु नवयुवक तनिक भी कुपित नहीं हुआ और भविष्य में मिलने का आश्वासन देकर चला गया।

और इस घटना के कई दिन बाद नवयुवक सहसा ही एक शाम खत्री के समक्ष उपस्थित हुआ। उसके गले में एक झोला था, शायद झोले में कुछ पुस्तकें और अखबार थे।

खत्री के कमरे में आ दरवाजा बन्द कर सांकल चढ़ाने के बाद नवयुवक ने झोले में से वह रोमांचक चीज निकाली, जिसके लिए खत्री बेचैन थे।

वह एक बड़ा म उजर पिस्तौल था। खत्री ने झपटकर उसे ले लिया और माथे से लगाकर चूमा। मारे प्रसन्नता के मुंह से बोल नहीं निकल रहे थे। आज़ाद को पकड़कर अपनी छाती से लगा लिया।

आज़ाद गम्भीर मुस्कान के साथ बोले—'स्वामीजी यह क्या कर रहे हैं ? मैं तो बिचवइय्या हूं। मित्र ने पुस्तक दी तो मैंने पढ़वाकर आपको वापस कर दी और यह चीज दे दी है, सो आपको दिखला कर इसको भी वापस कर दूंगा।'

इस पर खत्री ने मुस्कराते हुए कहा—'आज़ाद अब हमें बनाने की चेष्टा न करो। मुझे तो कुछ-कुछ पहले से शक हो गया था। तुम खूब छुपे रुस्तम निकले। मुझे इतना मूर्ख मत समझो। अब अपने आपको छिपाने से न तुम्हारा काम चलेगा, न मेरा।'

इस पर आज़ाद हंस पड़े और बोले—'स्वामीजी क्या करें ? गुप्त सस्था का काम ही ऐसा होता है। अब तो आप स्वयं दल में आ रहे हैं, आज से आपको बहुत संभलकर चलना होगा।'

और इस प्रकार अपनी संगठन पटुता, व्यवहार और अथक प्रयत्न से आज़ाद दल में जाने कितने नवयुवकों को ले आये।

दल को संगठित और सशक्त करने तथा विस्तार देने में सबसे आगे रहे थे।

आज़ाद की अपनी कोई व्यक्तिगत आकांक्षा नहीं थी। उनका एक-मात्र ध्येय क्रांति द्वारा देश को आजाद कराना था।

संगठन-कार्य के निमित्त अब वे बाहर भी जाने लगे, जो भी उनके सम्पर्क में आया, तटस्थ और अप्रभावित नहीं रह सका। आज़ाद ने बड़ी सूझ-बूझ से छांट-छांटकर सदस्य बनाये।

प्राण हथेली पर लेकर घूमने वाला आज़ाद, व्यक्तिगत रूप से अत्यन्त सीधा-सच्चा, कर्त्तव्यनिष्ठ और परिश्रमी था। दल पर समर्पित होने के साथ ही घर-द्वार, माता-पिता और भूख-प्यास, सभी की चिन्ता छूट गई।

इतना बड़ा संगठन तो खड़ा हो गया, मगर इसे संचालित करने और दल की योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिए धन की आवश्यकता थी। दल के प्राय: सभी सदस्य घर-द्वार और नौकरी-चाकरी का परि-त्याग कर देश को स्वतन्त्र कराने का बीड़ा उठाने वाले थे।

फिर उनके पास आय का क्या साधन होता ? आज़ाद इसके लिए चिन्तित थे।

कुछ सदस्यों से दान तो मिल जाता था परन्तु वह पर्याप्त न था और दल की गोपनीयता भंग होने का भी खतरा था।

दल, देश और डाके

दल के प्रभाव और देशव्यापी विस्तार के लिए रंगून से पेशावर तक एक 'क्रांतिकारी' पर्चा बांटा गया।

यह पर्चा अंग्रेजी में था। इसमें दल के कार्यों एवं उद्देश्यों पर प्रकाश डाला गया था और क्रांतिकारी प्रयत्नों में सफलता एवं सहयोग के लिए देश के नवयुवकों का आह्वान किया गया था।

पर्चे के प्रसार और वितरण में दल के सदस्यों ने अभूतपूर्व सफ-लता पाई। शायद ही नवयुवकों से सम्बन्धित कोई ऐसी संस्था और

विद्यालय शेष बचा होगा जहां क्रांतिकारी पर्चा न बंटा हो।

देश के विभिन्न भागों में क्रांतिकारी प्रयत्नों के समर्थकों को इस पर्चे से उत्साह, प्रेरणा और दिशा मिली। जनता ने दल के विस्तार का महत्त्व समझा।

यह पर्चा लाहौर के उत्साही क्रांतिकारियों भगवतीचरण, सुखदेव, भगतसिंह और यशपाल के हाथों भी लगा। उन दिनों पंजाब में 'नौजवान भारत सभा' का संगठन जोरों पर था और ये नवयुवक बड़े उत्साह से सक्रिय थे। एच० आर० ए० के आह्वान पर पंजाब में गुप्त संगठन की स्थापना के लिए नवयुवक तत्पर हो गए। एच० आर० ए० और 'भारत नौजवान सभा' के उद्देश्यों में पर्याप्त साम्य था। भगतसिंह का प्रभाव बढ़ रहा था और वह एच० आर० ए० में सम्मिलित होने के लिए आतुर था।

और बनारस में इस पर्चे के वितरण और प्रसार का करिश्मा आज़ाद ने दिखाया।

तमाम निगरानी और सतर्कता के बावजूद स्कूल-कालेज के रजिस्टरों तक में क्रांतिकारी पर्चे पाए गए।

दल के प्रति जनता का विश्वास और सम्मान बढ़ गया।

'इस आंदोलन के सिलसिले में बहुत प्रचार-कार्य न हो सका, किन्तु फिर भी लोगों में राजनैतिक पुस्तकों का अध्ययन करने का सिलसिला खूब चलाया गया। उस जमाने में (STUDY CIRCLES) का रिवाज नही था, इसलिए दूसरे प्रकार से राजनैतिक शिक्षा दी जाती थी। पत्र गुप्त रूप से भेजने के लिए पोस्ट बाक्स कायम किए जाते थे। पत्र जिसके लिए होता था, उसके नाम न होकर किसी दूसरे व्यक्ति के नाम आता था जिस पर पुलिस को शक न होता था। जहां तक होता था, लोग एक-दूसरे को नहीं जान पाते थे। बिना काम के एक-दूसरे से कोई प्रश्न नहीं पूछ सकता था।

दल के नियम बड़े कठिन थे। एक बात यह भी थी कि यदि कोई सदस्य किसी प्रकार दल को धोखा दे तो उसको दल से निकाल देने

गोली मार देने का भी हक था।

—श्री मन्मथनाथ गुप्त

दल की सदस्य संख्या और कार्यक्रम बढ़ते जा रहे थे, परन्तु धन के अभाव में बड़ी योजनाएं कार्यान्वित नहीं हो पा रही थी।

दल के सदस्यों के भरण-पोषण की समस्या 'क्रान्तिकारी साहित्य' का प्रकाशन और प्रचार-प्रसार तथा हथियार खरीदने और दल की विभिन्न शाखाओं से संपर्क स्थापित करना, सभी कुछ के लिए पैसों की आवश्यकता थी। परन्तु पैसा आए किन साधनों से ? केवल दान और चन्दे की राशि पर इतने बड़े संगठन का संचालन संभव न था।

आज़ाद आर्थिक व्यवस्था के लिए अत्यधिक चिन्तित थे, स्वयं अपने भूखे सोने की उन्हें कोई चिन्ता न थी। लगातार कई दिनों के लिए भूखे रहने को तत्पर रहते।

दल के लिए धन प्राप्त करने का जो जैसा मार्ग सुझा देता, उस पर चल पड़ते।

नित्य प्रातःकाल पांच सौ दण्ड बैठकें लगाना आज़ाद का पहला काम था। कुछ खाना-खुराक मिल गया तो हरिकृपा अन्यथा कुछ कोई परवाह नही। हां, दैनिक अखबार जरूर मिले चाहे जैसे भी हो बिना अखबार के देश के सामयिक घटना-चक्र का ज्ञान कहा से होता ?

आनन्दमठ, गुरु गोविन्दसिंह, शिवाजी, 'मदर' आयरलैंड की क्रान्ति और 'डीवेलरा' आदि जाने कितनी क्रान्तिकारी पुस्तकों का अध्ययन-मनन किया-कराया जाता।

कसरत और अखबार, किताबों के बाद ही दूसरे काम। दल-स्थल का वातावरण ऐसा था मानो ठेलुओं-अखबारों का अड्डा हो, ताकि पुलिस और आम लोग 'क्रान्तिकारी संगठन' न समझ बैठें, मगर भीतर-ही-भीतर जड़ मजबूत हो रही थी और शाखाएं निकलती-बढ़ती जा रही थी।

दल के लिए धन-संग्रह करने के लिए आज़ाद ने कई रूप बदले,

अनेक प्रयत्न किए परन्तु परिस्थिति कुछ संभल न सकी।

दल की आर्थिक स्थिति के संबंध में विचार-विमर्श के लिए सदस्यों की बैठक हुई।

इस बैठक में पंडित रामप्रसाद बिस्मिल, राजेन्द्र लाहिड़ी, अशफाकउल्ला, शचीन्द्रनाथ बख्शी, रोशनसिंह, मन्मथनाथ गुप्ता तथा रामकृष्ण खत्री आदि ने भाग लिया।

जोगेश बाबू ने इसमें प्रमुख हिस्सा लिया।

कुछ सदस्यों ने प्रस्ताव रखा कि पार्टी के लिए धन प्राप्त करने के लिए राजनैतिक डकैतियां डाली जायें। बंगाल तथा अन्य प्रान्तों की पार्टियां पहले ही यह मार्ग अपना चुकी थीं।

कुछ सदस्यों ने इसका विरोध करते हुए टीका की—'यह हमारे लिए भारी खतरा साबित हो सकता है। हम सरकार की नजरों में शीघ्र चढ़ जायेंगे और बहुत संभव है कि हमारा भंडा फूट जाए।'

परन्तु डाका डालकर धन लाने के अतिरिक्त दूसरा कोई मार्ग भी न था।

अन्ततोगत्वा निश्चय हुआ कि सरकार की गिद्ध-दृष्टि से बचे रहने के लिए गांवों में डकैती डाली जाए। यह भी निश्चित किया गया कि ये डकैतियां सिर्फ धनाढ्य सेठों के यहां डाली जायें, जन-साधारण को हानि न पहुंचाई जाय। यथासंभव हत्यायें बचाई जायें और स्त्रियों पर हाथ न उठाया जाए।

इस बैठक में डकैती योजना को कार्यान्वित करने पर विचार किया गया। पं० रामप्रसाद बिस्मिल के नेतृत्व में योजना की रूपरेखा तैयार की गई और आगे का कार्यक्रम बनाया गया।

'डाका डालने के समय एक विशेष प्रकार की शब्दावली का प्रयोग किया जाता था। जैसे 'ज्ञान जो है सो बरिन्डा' इस वाक्य का प्रयोग उस समय होता था जब डाका डालने की तैयारी व्यर्थ हो जाती थी।

डाके में भाग लेने वाले को 'ज्ञानी' कहते थे। जो 'डाके' के बारे में पूर्णरूपेण ज्ञान नहीं रखते थे उन्हें 'भक्त' कहा जाता था। जिसे डाके

का अच्छा-खासा ज्ञान होता था उसे 'अवधूत' कहा जाता था।

इन शब्दावलियों का निर्माण केवल गोपनीयता और अपने तक सीमित रखकर काम चलाने के लिए किया गया था, किन्तु दल के विधान से इनका कोई सम्बन्ध न था।

पं० रामप्रसाद बिस्मिल के नेतृत्व में डाके का क्रम आरंभ हुआ।

पहला डाका फतेहपुर के गांव में डाला गया और वह असफल रहा।

किन्तु क्रान्तिकारी हताश न हुए।

एक···दो···तीन···चार। डाके के बाद डाके डाले गए।

बिस्मिल के नेतृत्व में

प्रतापगढ़ के निकट एक गांव।

छः-सात सशस्त्र व्यक्ति एक सूदखोर महाजन के यहां घुस पड़े।

एक व्यक्ति गांव वालों को डराने-धमकाने के लिए हवाई फायर कर रहा था।

भीतर घुसे लोगों ने अपना काम शुरू कर दिया। दल के नेता बिस्मिल पिस्तौल ताने द्वार पर खड़े थे ताकि गाव वाले भीतर न जा सकें।

मगर सूदखोर के घर की स्त्रियां काफी मर्दाना थी, उन्होंने अपने गहने, रुपये लुटते देखा तो 'डाकुओं' पर टूट पड़ीं। दोनों के बीच छीना-झपटी होने लगी।

एक स्त्री काफी मोटी-तगड़ी और हिम्मतवाली थी। उसने आजाद का हाथ थाम लिया और उस पर धावा बोल दिया। आज़ाद ने उस पर जवाबी हमला नहीं किया। वह चुपचाप खड़े रहे।

उसने आजाद का रिवाल्वर छीन लिया और दूसरी तरफ को भागी।

क्रोध और क्षोभ के मारे आजाद का चेहरा तमतमा उठा।

तब तक दल के नेता ने हांक लगाई—'चलो।'

मजबूरन लौटना पड़ा।

मगर आजाद अब भी भीतर डटे अपना रिवाल्वर पाने के प्रयत्न में थे।

गांव वालों की भीड़ एकत्रित हो चुकी थी।

उनके हाथों में लाठियां, भाले, फरसे और लालटेनें थीं। 'कथित डाकुओं' को जाते देखकर उन लोगों ने ढेलेबाजी शुरू कर दी।

उनसे पीछा छुड़ाने के लिए दल के नेता ने दनादन दो फायर किए।

एक ग्रामीण धराशायी हो गया और अन्य ने भयभीत होकर पीछा करना छोड़ दिया।

'अरे! आजाद कहां रह गए?' आजाद को दल में न पाकर एकाएक लोगों का ध्यान गया।

तभी आजाद को झपटकर आते देखा गया।

'कहां फंस गए थे?' लोगों ने अचरज से पूछा।

'उस औरत ने मेरी पिस्तौल छीन ली थी।'

'क्या उससे पिस्तौल छुड़ा नहीं सकते थे? उसे गोली मार देनी चाहिए थी!' किसी साथी ने कहा।

'हमारा नियम है कि स्त्री पर हाथ नहीं उठायेंगे।' आजाद ने उत्तर दिया।

लोग सन्न रह गए।

दूसरा डाका बड़ी चतुरता के साथ डाला गया। दल के नेता पं० रामप्रसाद 'बिस्मिल' ने पुलिस कप्तान की वर्दी पहनी। अन्य सदस्यों ने भी पुलिस की पोशाकें पहन ली।

यह नाटक घर का दरवाजा आसानी से खुलवाने के लिए किया गया।

इस बार भारी सफलता मिली। गांव वालों ने समझा पुलिस उस घर की तलाश ले रही है, जबकि अन्दर पुलिस भेषधारी बड़े इत्मीनान के साथ अपना काम करने में सफल हुए।

परन्तु इन छोटे-मोटे डाकों से आर्थिक समस्या का समाधान नहीं हो सका, बल्कि खतरे बढ़ते रहे।

रामकृष्ण खत्री ने धन प्राप्त करने का एक नया सुझाव रखा। वे उदासी साधुओं के दल के प्रमुख सदस्य रह चुके थे और एक गद्दीधारी महंत के प्रमुख शिष्य और विश्वासपात्र भी।

उन्होंने बताया कि एक समृद्ध महंत अपनी गद्दी के लिए चेला ढूंढ़ रहा है। उसके पास अतुल धन है, वह प्रायः बीमार रहता है, शीघ्र मरने की संभावना है, अतः जो बनेगा सारी संपत्ति उसी के हाथ लगेगी।

दल ने आज़ाद को उस महंत का चेला बनाने का निश्चय किया, पहले तो आज़ाद झिझके, किन्तु दल के निर्णय की अवज्ञा न करने तथा धन की आवश्यकता की बात सोचकर वे तैयार हो गए।

खत्रीजी ने सारी व्यवस्था कर दी।

गाजीपुर में वह उदासी अखाड़ा था। खत्री ने महंत को आज़ाद का नाटकीय परिचय दिया। आज़ाद महंत का चेला बन गए।

मगर वह काम आसान न था।

पहले तो उन्हें गुरुमुखी भाषा सीखनी पड़ी। पूजा-पाठ और आरती-संध्या में जुटना पड़ा।

यह सब उन जैसे क्रान्तिकारी के लिए महान् संकट का काम था। कुछ दिनों तक तो चलाया मगर आगे चल पाना कठिन हो गया।

उन्होंने ऊबकर खत्री को पत्र लिखा—'यहां मेरी तबियत बिलकुल नहीं लगती, फौरन आओ और इस जेलखाने से मुक्ति दिलाओ।'

मन्मथनाथ गुप्त को साथ लेकर खत्री दौड़े गए।

किसी प्रकार अवसर निकालकर आज़ाद उनसे एकांत में मिले। उस समय आज़ाद के शरीर पर गेरुआ वस्त्र था, मगर उनका चेहरा

मुरझा-सा गया था और वे व्यग्र तथा दु:खी दीख रहे थे।

मौका पाकर आज़ाद ने साथियों से कहा—'यह साला महंत अभी मरने का नहीं। डंड पेलता रहता है और खूब दूध पीता है। गुरु-मुखी पढ़ते-पढ़ते मेरी आंखें फूटी जा रही हैं। मैं तो अब यहां नहीं रहूंगा।'

दल से राय-परामर्श कर शीघ्र ही वापस बुला लेने का आश्वासन देकर वे लोग लौट गए।

किन्तु आज़ाद के लिए क्षण-क्षण बीतना मुश्किल हो रहा था।

एक दिन बुरी तरह ऊबकर उन्होंने महंत की गद्दी छोड़ दी और बनारस का रास्ता लिया।

बनारस में दल का काम जोर-शोर से चल रहा था, मगर आर्थिक समस्या निरंतर कठिन होती जा रही थी। दल को जीवित रखने के लिए धन की आवश्यकता थी। डकैती के जो प्रयास किए गए, वे भी प्राय: असफल और खतरनाक सिद्ध हुए।

पार्टी गांवों की डकैतियों में ऊब चुकी थी।

क्योंकि इसमें संकट अधिक रहता था लाभ नगण्य-सा, इसलिए इस विषय में एक प्रस्ताव पारित हुआ जिसमें यह निश्चय किया गया कि भविष्य में किसी व्यक्ति विशेष या गांव में डाका न डाला जाए। इसमें पार्टी की प्रतिष्ठा को धक्का लगता है और साथ ही दल को हानि भी अधिक पहुंचती है। इसलिए भविष्य में रेलों या बैंकों की ही संपत्ति लूटी जाए।...पं० रामप्रसाद बिस्मिल के नेतृत्व में काम करने वाले दल के कार्यकाल में क्रांतिकारियों के विषय में जनता में न तो जानकारी ही थी और न उनके प्रति सहानुभूति ही इस हद तक थी कि लोग उन्हें खुलकर या चोरी-छिपे इतनी आर्थिक सहायता देते कि उन्हें दल की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए डकैतियों का सहारा न लेना पड़ता।...

जब डकैतियां बन्द कर दी गईं तो निश्चय किया गया कि सरकारी

खजाना लूटा जाए।···यह योजना बनाते समय यह बात निश्चित कर दी गई कि इसमें दल का राजनैतिक रूप स्पष्ट रहे जिससे जनता पर भी इसका अच्छा प्रभाव हो तथा सरकार को भी दमन के प्रतिकार को राजनैतिक रूप दिया जा सके।

—श्री विश्वनाथ वैशम्पायन

काकोरी षड्यन्त्र

'सन् 1925 तक उत्तर प्रदेश में क्रान्तिकारी संगठन मजबूत हो गया था और संगठन में तेजी भी आ गई थी। जुलाई के अन्त में हमें खबर मिली कि जर्मनी से पिस्तौलों का चालान आ रहा है। कलकत्ता बन्दरगाह में पहुंचने से पहले ही नगद रुपया देकर उसे प्राप्त करना था। एतदर्थ काफी रुपयों की आवश्यकता पड़ी और पार्टी के सामने डकैती के अलावा कोई अन्य चारा नहीं था।'

—श्री शचीन्द्रनाथ बख्शी

और इसी परिस्थिति में 'काकोरी षड्यन्त्र' का सूत्रपात हुआ।

आज़ाद तो ऐसे एक्सनों के लिए सबसे आगे रहते थे।

उनकी स्फूर्ति, जोश और निर्भीकता को देखकर पं० रामप्रसाद बिस्मिल ने उन्हें 'क्विक सिलवर' अर्थात् 'पारे' का खिताब दिया।

खतरनाक-से-खतरनाक 'एक्सन' में जाने के लिए सबसे आगे रहते।

और बड़ी जिन्दादिली के साथ कहते—'मुझे बचपन में शेर का मांस खिलाया गया है।'

यह सत्य भले न हो, परन्तु आज़ाद में शेर की-सी निर्भीकता, साहस और पौरुष था।

जब काकोरी षड्यन्त्र योजना के सम्बन्ध में दल की बैठक हुई तो अशफाक उल्ला ने ट्रेन डकैती का विरोध करते हुए कहा—

'इस डकैती से हम सरकार को चुनौती तो अवश्य दे देंगे, परन्तु यही से पार्टी का अन्त प्रारम्भ हो जाएगा, क्योंकि दल अभी इतना सुसंगठित और दृढ़ नहीं है, इसलिए अभी सर.ार से सीधा मोर्चा लेना ठीक नहीं होगा।'

परन्तु अन्ततोगत्वा रेल में डकैती डालकर सरकार खजाने को लूटने की योजना बहुमत से पास हो गई।

'पहले यह निश्चय नहीं हो रहा था कि इस योजना को किस प्रकार कार्यरूप में परिणित किया जाए। एक योजना यह भी थी और बहुमत अंश तक हम उसे कार्यरूप में परिणित करने के लिए प्रस्तुत हो गए थे कि गाड़ी जब किसी स्टेशन पर खड़ी हो जाए तो उससे रेल के थैले लूट लिए जायें। परन्तु बाद को विचार करने पर यह योजना कुछ बुद्धिमानी की नहीं जंची, अतः उसका विचार त्याग दिया गया और यह निश्चय किया गया कि चलती गाड़ी की जंजीर खींचकर रोक लिया जाए और फिर रेल के थैले लूट लिए जायें।'

—श्री मन्मथनाथ गुप्त

सरफ़रोशी की तमन्ना

'सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है।' ये जोशीले स्वर क्रान्तिकारियों के कंठहार बन गए थे।

और इस सरफरोशी की तमन्ना का जीता-जागता रोमांचक उदाहरण 9 अगस्त को सत्य चरितार्थ हुआ।

9 अगस्त, 1925 की वह ऐतिहासिक शाम।

'तीन सेकेंड क्लास लखनऊ!' एक नौजवान ने टिकट के पैसे टिकट-घर की खिड़की में बढ़ाए।

यह था छोटा-सा ग्रामीण स्टेशन—काकोरी!

टिकट शाहजहांपुर से लखनऊ की ओर जाने वाली 8 डाउन गाड़ी

के लिए मांगे गए।

टिकट बाबू को अचरज हुआ। काकोरी से सेकेंड क्लास के टिकट कभी-कभार ही बिकते थे।

उसने टिकट मांगने वाले को घूरकर देखा।

वह (शचीन्द्रनाथ बख्शी) ताड़ गया और मुंह घुमाकर रूमाल से पोंछने लगा।

टिकट लेकर वह प्लेटफार्म पर आया और अशफाक तथा राजेन्द्र को निकट बुलाकर अपने साथ रहने को कहा।

बाकी लोग योजनानुसार जहां-तहां तत्पर थे।

गाड़ी आई और तीनों सेकेंड क्लास के एक खाली डिब्बे में चढ़ गए। अन्य साथी एक थर्ड क्लास के डिब्बे में चढ़े।

गाड़ी चल दी, धीरे-धीरे अपनी रफ्तार पकड़ने लगी। एक मुसाफिर उसमें और चढ़ आया था।

अंधेरा हो चुका था। डिब्बे में बिजली जल रही थी।

गाड़ी के सिगनल के पास पहुंचते-पहुंचते शचीन्द्रनाथ ने साथियों को सम्बोधित किया—'भाई जेवरों का बक्स कहां रह गया?'

अशफाक ने उत्तर दिया—'वह तो काकोरी में ही छूट गया।'

बख्शी और राजेन्द्र अपने-अपने स्थान से एकाएक उठे और दोनों ओर की जंजीर खींच दी।

ची-ची करती हुई गाड़ी धीमी होते-होते रुक गई।

वे दोनों आकर द्वार पर खड़े हो गए। फिर उतर पड़े और आगे की तरफ बढ़ने लगे।

'जंजीर किसने खींची?' उधर से आते हुए गार्ड ने उनसे पूछा।

'काकोरी में हमारा जेवर का बक्सा छूट गया है, हम उसी को लेने जा रहे हैं।' उन्होंने उत्तर दिया।

खजाने का बक्स गार्ड के ही डिब्बे में था।

वहां पहुंचकर इन लोगों ने हवाई फायर करते हुए यात्रियों को

आगाह किया—'खबरदार कोई मुसाफिर उतरे नहीं ! हम सरकारी खजाना लूट रहे हैं।'

मुसाफिरों को सांप सूंघ गया। कोई अपने स्थान से हिला भी नहीं।

अपने डिब्बे के पास ही खड़े गार्ड साहब इंजन की ओर हरी बत्ती दिखा रहे थे।

शचीन्द्र ने उनकी पसली में पिस्तौल की नली लगाकर बत्ती छीन ली, उसे दूर फेंका और गार्ड को डांटा—'गोली मार दूंगा, हरी बत्ती क्यों दिखा रहा था ?'

गार्ड सिटपिटा गया, होश-हवाश जाते रहे।

वह हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाया—'मेरी जान बचा दीजिए।'

बख्शी ने कहा—'घास पर लेट जाओ।'

वह तुरन्त घास पर लेट गया।

पिस्तौल के कुंदे से गार्ड के डिब्बे के बल्ब तोड़कर अंधेरा कर दिया गया।

कुछ साथियों ने लपककर खजाने का बक्सा डिब्बे के नीचे गिरा लिया और उस पर हथौड़ा-छेनी का प्रहार आरम्भ हो गया।

बक्स तोड़ने का काम अशफाक कर रहे थे। कुछ अन्य पहरेदारी में और कुछ उनके सहयोग में थे।

गाड़ी में तेरह सशस्त्र व्यक्ति तथा एक अंग्रेजी मेजर भी मौजूद था, परन्तु सबकी सिट्टी-पिट्टी गुम थी। किसी ने चूं भी नहीं किया। स्तम्भित से अपने स्थान पर बैठे रहे।

एक आदमी दूसरे डिब्बे में बैठी अपनी बीवी को देखने उतरा और एक ही फायर में ठण्डा हो गया।

पं० रामप्रसाद बिस्मिल सारा नेतृत्व संभाले हुए थे।

अशफाक के अथक परिश्रम से तिजोरी टूट गई और रुपयों के थैले बाहर निकाले जाने लगे।

तभी लखनऊ से गाड़ी आने की घरघराहट हुई।

अनिष्ट की आशंका ने क्रान्तिकारियों को झकझोर दिया। गाड़ी आई और धड़धड़ाती हुई निकल गई।

जान-में-जान आई। रुपये एक गठरी में बांध दिए गए।

दल के नेता ने चलने का आदेश दिया।

तभी शचीन्द्रनाथ बख्शी उनसे बोले—'सूबेदार साहब ! आप आगे बढ़ें, मैं जरा गार्ड से निबट लूं।'

दल के अन्य लोग निर्दिष्ट पथ की ओर चल पड़े।

गाड़ी अब भी खड़ी थी। वातावरण रोमांचक और शांत था।

बख्शी ने गार्ड को सम्बोधित किया—'रेल गार्ड साहब ! मुर्दा आदमी बोल नहीं सकता। आपने मुझे बहुत देर तक बिजली की रोशनी में देखा और पहचाना है, इसलिए आपको क्यों न खत्म कर दूं ताकि पहचानने का झगड़ा ही खत्म हो जाए।'

मारे भय के गार्ड साहब का रोआं-रोआं कांप रहा था। वे बड़ी दयनीयता से गिड़गिड़ा पड़े—'मैं ईश्वर को साक्षी देकर कसम खाता हूं कि आपको नहीं पहचानूंगा।'

बख्शी को भारतीय गार्ड पर दया आ गई।

दल के लोग काकोरी के घने जंगलों में विलुप्त हो गए।

रास्ते में थैलों के रुपए और नोट गठरी में बांध लिए गए और थैली को पानी में डाल दिया गया।

घूम-फिरकर टेढ़े-मेढ़े रास्तों से वे सब लखनऊ में दाखिल हुए और 'चौक' के निर्दिष्ट स्थान पर पहुंचे।

आज़ाद ने वह रात एक पार्क में बैठकर बिता दी।

और दूसरे दिन 'इण्डियन डेली टेलीग्राफ' में सुर्खी चमक उठी, 'काकोरी के पास सनसनीखेज डकैती।'

झांसी में

काकोरी काण्ड ने ब्रिटिश सरकार का तख्ता हिला दिया। सरकार ने इस डकैती को अपने लिए चुनौती के रूप मे स्वीकार किया।

इस काण्ड से सम्बन्धित व्यक्तियों को पकड़ने के लिए गुप्तचर विभाग चारों तरफ मंडराने लगा।

दल के लोग तितर-बितर हो गए। कुछ अज्ञात स्थानों को चले गए और जो लखनऊ में बच रहे, शीघ्र पलायन करने का प्रयत्न करने लगे।

आज़ाद ने स्थिति गम्भीर देखी तो साथियों से अपने भांवरा (मातृभूमि) जाने की बात कह कर गुम हो गए।

किन्तु भांवरा न जाकर उन्होंने बनारस की राह ली।

26 सितम्बर, 1925 को भारी संख्या में गिरफ्तारियां हुईं, मगर आज़ाद तथा उनके कुछ साथी नहीं पकड़े जा सके।

उत्तर प्रदेश के मुख्य-मुख्य नगरों, स्थानों और स्टेशनों पर उनके फोटो चिपकाए गए और पकड़ने वाले को भारी पुरस्कार देने की घोषणा की गई। मगर आज़ाद हाथ आने से रहे।

बनारस में भी चारों ओर पुलिस का जाल बिछा था। आज़ाद ने यहां भी ठहरना उचित नहीं समझा। उन्होंने झांसी की राह ली।

शचीन्द्रनाथ बख्शी सन् 1923-24 के क्रांतिकारी संगठन के निमित्त झांसी आ चुके थे। उसी परिचय के आधार पर झांसी में आज़ाद मास्टर रुद्रनारायण सिंह के यहां टिके।

मास्टर साहब का घर क्रांतिकारियों का आश्रयदाता होने के साथ ही कला और व्यायाम का भी केन्द्र था। वैसे वे राष्ट्रीय पाठशाला में ड्राइंग के अध्यापक थे।

आज़ाद यहां छिपते-छिपते हुए आए। पुलिस की गिद्ध-दृष्टि से बचने के लिए उन्हें बड़े कष्ट उठाने पड़े।

पुलिस से बचने के लिए उन्हें कई दिन जंगल में बिताने पड़े, भूखे-प्यासे रहना पड़ा, मगर आज़ाद हिम्मत नहीं हारे।

मास्टर रुद्रनारायणसिंह ने उन्हें ओरछा के जंगल मे तारार नदी के निकट साधु भेष में रखा।

हनुमानजी की मढ़िया के निकट एक झोंपड़ी खड़ी हो गई और ब्रह्मचारीजी उसमें रहने लगे।

जंगली इलाका, सुनसान स्थान और हिंसक पशुओं का भय। मगर ब्रह्मचारीजी सुख की नींद सोते थे।

लोगों ने वहां उन्हें सोने से मना किया।

इस पर ब्रह्मचारीजी निश्चिन्ततापूर्वक बोले, 'साधुओं को किसका डर बच्चा! उन्हें जब हम नहीं सतायेंगे तो वे हमारे पास क्यों आयेंगे? यदि प्रभु की ऐसी ही इच्छा हुई तो उसे कौन रोक सकता है?'

मगर अधिक दिनों तक यह साधु-जीवन भी नहीं निभा। मास्टर रुद्रनारायणसिंह ने एक नई युक्ति सोची।

आज़ाद झांसी के एक मोटर ड्राइवर के यहां रहने लगे। उसके सहायक के रूप में मोटर ड्राइवरी सीखने लगे। शीघ्र ही इस कार्य में सफलता प्राप्त कर ली।

झांसी में सी० आई० डी० का जाल बिछा था, मगर आज़ाद का बाल भी बांका न हो सका।

डंड-बैठक करना, बन्दूक के निशाने साधना और मोटर चलाना आज़ाद की दैनिकचर्या थी।

भीतर-ही-भीतर वे क्रांतिकारी संगठन को दृढ़ करने में लगे थे। यहां नए-नए सदस्यों से परिचय और सम्बन्ध बढ़ रहे थे।

खनियाधाना नरेश श्री खलकसिंह जू देव राष्ट्रीय विचारों के थे। वे कांग्रेस के हिमायती थे और जब-तब उसकी आर्थिक सहायता किया करते थे। मास्टर रुद्रनारायणसिंह का उनसे अच्छा परिचय था। मास्टर साहब झांसी दल के लिए राजा साहब से बन्दूक-पिस्तौल प्राप्त

करना चाहते थे, इसके लिए उन्होंने आज़ाद ही को माध्यम बनाया।

राजा साहब क्रांतिकारियों के प्रति सहानुभूति रखते थे। जब उन्होंने आज़ाद के झांसी में होने की बात सुनी तो मिलने के लिए उत्सुक हो उठे।

मास्टर साहब ने मिलने का कार्यक्रम निश्चित किया।

सुबह का समय था। राजा की कोठी के बगीचे में उनके मित्रों, शुभचिन्तकों की गोष्ठी जमी थी।

एकाएक मास्टर रुद्रनारायणसिंह के साथ गठे बदन का एक आकर्षक नवयुवक वहां आ पहुंचा।

स्वयं राजा साहब ने आगे बढ़कर उस नवयुवक का स्वागत किया।

गोष्ठी में उपस्थित प्रत्येक व्यक्ति की दृष्टि उस अपरिचित नवयुवक पर गढ़-सी गई।

राजा साहब ने बड़े आदर के साथ उसे अपने निकट ही बिठाया, दोनों ने एक ही मेज़ पर साथ-साथ नाश्ता किया।

फिर बातचीत का दौर आरम्भ हुआ। निशानेबाजी का प्रसंग छिड़ गया और गोष्ठी में उपस्थित सज्जन अपनी-अपनी हांकने लगे।

राजा साहब के सम्मानित मित्र के रूप में आज़ाद ने भी निशानेबाजी के संबंध में अपने अनुभव सुनाए।

राजा साहब के मुसाहिबों में आज़ाद की निशानेबाजी की परीक्षा लेने की भावना जागृत हो उठी।

परन्तु राजा साहब को यह उचित न जान पडा।

उन्होंने इस प्रसंग को टालना चाहा, परन्तु मुसाहिब थे कि आज़ाद के पीछे पड़ गए। आज़ाद ने बन्दूक ले ली और निशानेबाजी के लिए तत्पर हो गये, परन्तु राजा साहब ने स्थिति संभाल ली और आज़ाद के स्थान पर एक अन्य क्रांतिकारी भगवानदास माहौर इस निशानेबाजी की परीक्षा में सफल हुए, मुसाहिबों का मुंह लटक गया।

'शाम को भोजन से पहले और बाद में भी संगीत और साहित्य की

गोष्ठी जमी। कुन्दनलाल नाम के एक गवैए आए हुए थे और बुन्देलखण्ड के प्रसिद्ध कवि चिरगांव के मुंशी अजमेरी जी भी वहां उपस्थित थे। कुन्दनलाल का गाना हुआ, उन्होंने अधिकतर ठुमरी और दादरे ही गाए, जो शृंगार की भावना से भरे हुए थे, सो भी परकीय के हाव-भाव से ओत-प्रोत। मैंने सोचा, यह पंडितजी आज़ाद के लिए कड़ी परीक्षा है। अपने गाने के शौक में गजलें या अन्य प्रेम के गीत गाने पर मैं आज़ाद की झिड़कियां कई बार सुन चुका था। मुझसे गजलें गवाना दल में साथियों को विशेषत: अमरशहीद भगतसिंह का विनोद में आज़ाद को चिढ़ाने का एक अच्छा साधन था। अत: मैं यह बड़े ध्यान से देख रहा था कि इस सामन्ती दरबारी गोष्ठी में ऐसे गानों के प्रति आज़ाद का कैसा रुख रहता है?

कुन्दनलाल जी ने एक दादरा गाया।

'चले, आओ जी, आओ जी, आवो भला, हमसे न बोलो मोहन प्यारे।' इसको गायक महोदय ने हाव-भाव के प्रदर्शन के साथ इस प्रकार प्रस्तुत किया कि एक नायिका अपना शृंगार करती जाती है और बिब्बोक भाव से नायक की उपेक्षा करती जाती है।

मुझे देखकर अचरज हुआ कि आज़ाद को देखकर कोई यह नहीं कह सकता कि उन्हें यह बिल्कुल पसन्द नहीं आ रहा है और वे हृदय से इसका रस नहीं ले रहे हैं। आज़ाद के सम्मान में मेरी यह धारणा रही है कि वे उन लोगों में से एक हैं जिनके लिए कहा जा सकता है कि वे सुर से खफा, ताल से नाराज रहा करते हैं। मुझे यह देख कर आश्चर्य हो रहा था कि आज़ाद अन्य लोगों के साथ गायक के तवायफ जैसे हाव-भाव प्रदर्शन पर भी दाद देते जा रहे हैं और कमाल की बात यह थी कि उनका कोई रिमार्क जरा भी असंगत नहीं हो रहा था।

गायक महाशय रूपी और इठलाती हुई स्त्री का हाव-भाव प्रदर्शन अच्छा ही कर रहे थे, परन्तु बीच-बीच में अपनी प्रशंसा से उत्साहित हो मूंछों पर हाथ फेर लेते थे। इस पर आज़ाद के इस रिमार्क ने गायक

सहित सभी को चकित कर दिया।

'क्या कहना है सुर, लय और हाव-भाव के ! पर श्रीमान् उस्ताद ने मूंछों को साफ नहीं किया।'

इस पर गोष्ठी में कहकहे लगते रहे।

गोष्ठी में मुंशी अजमेरी की बहुमुखी प्रतिभा का प्रदर्शन देखने को मिला। मुंशीजी ने शुद्ध शास्त्रीय संगीत तो सुनाया ही, भागवत की कथा भी बिल्कुल कथावाचकों के ही लहजे में सुनाई।

आज़ाद हृदय से आनन्द ले रहे थे, यह दीख ही रहा था।

गोष्ठी समाप्त हुई तो आज़ाद, मास्टर साहब, सदाशिवजी और मैं कोठी की छत पर रात को आराम करने पहुंचे। वहां मुंशी अजमेर भी आ गए थे।

सोने से पहले मुंशीजी ने आज़ाद से पूछा—'कहिए पण्डितजी, कैसी लगी आपको गोष्ठी ?'

बड़ी सादगी से आज़ाद ने उत्तर दिया—'मुंशीजी, सच कहूं ! सुर-ताल की तमीज तो मुझे खाक भी नहीं है। औरों की 'री-री मां मरी री' जैसी बात तो मेरी समझ में आई नहीं। हां, आपके वीरगीत और वीर-वार्ताओं को जिन्दगी-भर नहीं भूलूंगा। उनमें थी 'धा-धा मारे-मारे धा' जैसी बात।'

मुंशीजी खिलखिलाकर हंस पड़े। पलंग पर लेटे थे, उठकर बैठ गए। आज़ाद भी बैठ गए और काफी थके होने पर मुंशीजी ने कई गीत फिर सुनाए। मुंशीजी के कई गीतों की पंक्तियों को बाद में मैंने आज़ाद को गुनगुनाते सुना है। कभी मौज में होते तो मुझे भी उन गीतों को सुनाने को कहते।···

—श्री भगवानदास माहौर

मास्टर रुद्रनारायणसिंह कुशल चित्रकार और फोटोग्राफर भी थे। वे आज़ाद की फोटो खींचने की ताक में थे, परन्तु आज़ाद अपना फोटो खिंचवाने के बिल्कुल विरुद्ध थे और इसका मौका ही न आने देते थे।

एक दिन नहाने के बाद जब कमर से तहमद बांधकर आज़ाद कमरे

में आए तो मास्टर साहब अपना कैमरा ठीक करते हुए बोले, 'आज तुम मुझे अपना चित्र इसी तरह खींच लेने दो।'

आज़ाद जाने किस मूड में थे, तैयारी करते हुए बोले—'अच्छा तो जरा मूंछें ऐंठ लेने दो।'

आज़ाद ने मूंछों पर हाथ लगाया नहीं कि मास्टर साहब ने क्लिक दबा दिया।

और एक दिन अचानक ही आज़ाद झांसी से भी लापता हो गया।

कहां गए ? कौन जाने।

आज़ाद और भगतसिंह

काकोरी काण्ड की गिरफ्तारी के फलस्वरूप दल छिन्न-भिन्न-सा हो गया, परन्तु आज़ाद तनिक भी हताश नहीं हुए। दल के संगठन के लिए उनके प्रयत्न जारी रहे।

पुलिस और सी० आई० डी० की तमाम मोर्चाबन्दी के बावजूद वे भेष बदल-बदलकर यहां-वहां की यात्रा करते रहे। वे प्राण हथेली पर लिये घूमते थे और उनका तकियाकलाम था—

सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है।
देखना है जोर कितना, बाज़ुए कातिल में है।।

कानपुर में गणेशशंकर विद्यार्थी का 'प्रताप' धड़ल्ले से निकल रहा था। राष्ट्रीय विचारधाराओं से ओत-प्रोत 'प्रताप' पर एक ओर ब्रिटिश सरकार की वक्र दृष्टि थी···तो दूसरी ओर देश के नवयुवकों के लिए स्वतन्त्रता की बलिवेदी पर न्यौछावर होने का आह्वान था।

जन-प्रिय विद्यार्थीजी क्रांतिकारियों के प्रति उदार होने के साथ-साथ उनके प्रेरणा-स्रोत और आश्रयदाता भी थे।

आज़ाद उनसे मिलकर गद्गद हो उठे। दल के पुनर्संगठन में विद्यार्थीजी का सहयोग मिला। आज़ाद कुछ दिन के लिए कानपुर में

जम गए।

और तभी एक दिन विद्यार्थीजी को लाहौर के एक तेजस्वी नवयुवक भगतसिंह का पत्र मिला कि कानपुर आकर उनके 'प्रताप' में काम करना चाहता है।

विद्यार्थीजी ऐसे उत्साही नवयुवक की उपेक्षा कैसे कर देते? उनके विचारों का स्वागत करते हुए तुरन्त कानपुर आने का निमन्त्रण दे दिया।

हिन्दुस्तानी प्रजातन्त्र दल (एच० आर० ए०) का पर्चा लाहौर तक पहुंच ही चुका था। नौजवान भारत के कार्यक्रम निर्धारित हो चुके थे।

'सन् 1929 की बात है, हम लोगों का जो कुछ थोड़ा-बहुत संगठन उस समय तक बन गया था, उसके सब सूत्र जयचन्द्रजी ही संभालते थे। दल नौजवान भारत सभा बनाने के अतिरिक्त और कुछ नहीं कर सकता था। हम लोगों को उससे कोई संतोष नही था। भगत सिंह ने पंजाब से दिल्ली और कानपुर जाकर दूसरे प्रांत के लोगों से सम्पर्क ढूंढ़ने का निश्चय किया। भगतसिंह की लाहौर से बाहर जाने की इच्छा का एक कारण यह भी था कि सरदार किशनसिंहजी उनके घर के काम की उपेक्षा कर केवल राजनैतिक कार्य में लगे रहने के कारण चिढ़े रहते थे और उस पर अपना अंकुश बढ़ा रहे थे।'

—यशपाल

लाहौर से दिल्ली आकर भगतसिंह ने 'अर्जुन नामक' अखबार में काम करना शुरू किया। परन्तु 'अर्जुन' का प्रकाशन बीच में ही स्थगित हो गया और भगतसिंह का उद्देश्य अधूरा रह गया।

किन्तु विद्यार्थीजी के आह्वान ने उसे दुगुनी आशा-उत्साह से भर दिया और वह कानपुर की गाड़ी में बैठ गया। उसके उत्साह को देख कर विद्यार्थीजी ने उसे गले से लगा लिया। वह 'प्रताप' के सम्पादकीय कार्य मे 'बलवन्त' के नाम से कार्य करने लगा।

विद्यार्थीजी के निकट एक अपरिचित किन्तु तेजस्वी नवयुवक को बैठा देखकर आज़ाद क्षण-भर को ठिठक गये।

वह नवयुवक लम्बे कद और छरहरे बदन का था। रंग गोरा था, आंखें छोटी-छोटी, तो भी उसके मुखड़े पर विलक्षणता का भाव था।

उसने सिर के ढीले केशों पर लटकती-सी पगड़ी बांध रखी थी और उसके शरीर पर कोट और लुंगी थी।

आज़ाद को उसने आकर्षित किया।

'आइए पंडित जी !' आज़ाद को संकोच में देखकर विद्यार्थीजी ने तपाक से कहा।

कार्यव्यस्त नवयुवक ने दृष्टि ऊपर उठाकर देखा। 'पंडितजी' के रूप में उसे एक भव्य व्यक्तित्वधारी रौबीले नवयुवक के दर्शन हुए।

'कैसा संयोग है कि 'दो दीवाने' जो एक-दूसरे के साक्षात्कार और सहयोग के लिए आतुर-लालायित रहे हैं। एक-दूसरे के समक्ष उपस्थित है।'

विद्यार्थीजी के इस कथन ने दोनों को प्रबल रूप से एक-दूसरे के प्रति आकर्षित किया।

बलवन्त का अनुमान सत्य निकला।

'तुम पंडितजी (आज़ाद) से मिलने को आकुल थे न बलवन्त ? तो तुम्हारी मनोकामना पूर्ण हुई।'

'ओह ! क्रांति-देवता पं० चन्द्रशेखर आज़ाद।' हर्षातिरेक में बलवन्त आज़ाद की ओर बढ़ा।

'वाह भाई वाह, खूब मिले···मुझे तुम्हारी ही तलाश थी।' कह-कर आज़ाद ने भगतसिंह को हृदय से लगा लिया।

फिर तो कुछ ही क्षणों में दोनों इस प्रकार घुल-मिल गए मानो पुराने परिचित हों।

वास्तव में छिन्न-भिन्न क्रांतिकारी संगठन की पुनर्स्थापना के लिए दोनों को एक-दूसरे की आवश्यकता थी।

यहीं पर भगतसिंह के साथ जनरल डिंग का खात्मा करने की योजना बनाई जाती है। बटुकेश्वरदत्त भी साथ होते हैं।

लखनऊ अदालत में काकोरी-काण्ड के अभियुक्तों का मुकदमा

आरम्भ हो गया।

परन्तु अभी उद्देश्य अपूर्ण हैं और ऐसी दशा में दल के मुख्य-मुख्य कार्यकर्ता जेल में पड़े रहें, यह शोचनीय है।

क्यों न उन्हें जेल से भगाने का प्रयत्न किया जाए।

एक गुप्त बैठक में काकोरी-काण्ड के अभियुक्तों को जेल से भगाने की मंत्रणा होती है।

और आज़ाद, भगतसिंह इस योजना को कार्यान्वित करने के लिए सक्रिय हो जाते हैं।

शाहजहांपुर में क्रांतिकारी अशफाक उल्ला का घर। दोपहर का समय था। अशफाक उल्ला के बड़े भाई रियासत उल्ला भोजन कर रहे थे।

एकाएक किसी ने द्वार की कुण्डी खटखटाई।

जाकर देखा तो एक हृष्ट-पुष्ट नौजवान सामने खड़ा था।

'कहिए !'

'अशफाक ने आपको कुछ रुपये भिजवाए हैं।' नौजवान ने एक छोटी-सी पोटली देते हुए कहा।

रियासत उल्ला को याद आया कि जब वे अशफाक से मिलने के लिए लखनऊ जेल गए थे, अशफाक ने कहा था—'मेरे मुकदमे में रुपयों की जरूरत हो तो मैं इन्तजाम कर दूं।'

'जेल से क्या कर सकते हो ?' रियासत को अचरज हुआ था।

'हम आपको रुपये भिजवा देंगे।' अशफाक ने गम्भीर मुस्कान के साथ कहा था।

वह समझ गए थे कि रुपए अशफाक ने ही भिजवाए हैं। मगर रुपए लाने वाले अपरिचित नवयुवक के संबंध में जिज्ञासा स्वाभाविक ही थी।

'आपका परिचय ?' नौजवान से पूछा।

'बताऊंगा, पहले आप मेरे लिए दियासलाई की एक डिबिया ले आइए। सुबह से बीड़ी नहीं पी।' (यद्यपि वह बीड़ी नहीं पीता था।)

रियासत माचिस लेकर लौटा तो वह जा चुका था। पोटली खोलकर देखी तो उसमें दो सौ रुपए थे। मगर वह नौजवान कौन था? जिज्ञासा बढ़ती ही रही।

और जब दूसरी बार अशफाक से मिला तो रुपया पहुंचाने वाले 'आश्चर्यजनक' व्यक्ति के बारे में पूछा।

अशफाक ने हंसते हुए जवाब दिया, 'वे चन्द्रशेखर आज़ाद थे। उन पर गिरफ्तारी का इश्तहार है, इसलिए अपने को बहुत होशियारी से रखते हैं।'

आज़ाद बन्दी साथियों की सहायता ही नहीं करते थे, बल्कि उन्हें जेल से भगाने के प्रयास में थे। भगतसिंह और कुन्दनलाल के साथ मिल कर यह योजना बनाई जा चुकी थी कि जिस समय हवालात से मोटर काकोरी कैदियों को लेकर अदालत जाती है, उस समय उसे रोककर बन्दियों को छुड़ा लिया जाए।

'काकोरी की डकैती असफल हो जाने और इस मामले में बहुत से लोगों के मुखबिर बन जाने के कारण इस समय क्रान्तिकारी सर्वसाधारण लोगों से सहानुभूति की आशा कम ही रखते थे।···युक्त प्रांत में उन दिनों बड़ा निरुत्साह था, सशस्त्र क्रान्ति के बढ़ने की कोई आशा थी तो केवल काकोरी के बंदियों को छुड़ा सकने से। ये योजनायें बार-बार बनतीं और प्रयोग में आये बिना ही रह जाती।'

—यशपाल

आजाद और भगतसिंह यह योजना कार्यान्वित करने के लिए अत्यधिक प्रयत्नशील थे। जयचन्दजी ने अनेक कार्यकर्त्ता लाहौर में भेज दिए थे। इस सम्पर्क ने पारस्परिक सहयोग तो बढ़ाया, परन्तु काकोरी बन्दियों को छुड़ाने की योजना सफल न हुई।

फांसी के तख्ते : आज़ादी के गीत

काकोरी-कांड का ऐतिहासिक मुकदमा लगभग 18 महीने तक लखनऊ की अदालत में चला।

इस मुकदमे में सरकार का लगभग दस लाख रुपया खर्च हुआ।

सरकारी गवाह बन जाने तथा कुछ 'अज्ञात कारणों' से छोड़ दिए जाने के बाद 24 अभियुक्त बचे, जिनमें अशफाक उल्ला, शचीन्द्र बख्शी तथा चन्द्रशेखर आज़ाद गिरफ्तार न किए जा सके। दामोदर स्वरूप सेठजी भी गिरफ्तार होकर भयंकर बीमारी के कारण छोड़ दिए गए। मथुरा और आगरा के शिवचरणलाल पर से मुकदमा रहस्यमय कारणों से उठा लिया गया। उरई तथा कानपुर के वीरभद्र तिवारी भी इसी प्रकार अज्ञात कारणों से छोड़ दिए गए। दफा 121 (सम्राट के विरुद्ध युद्ध घोषणा), 120 अ-राजनैतिक साजिश। 369 (कत्ल-डकैती), 302 (कत्ल) इन सब दफाओं के अनुसार मुकदमा दायर किया गया।

सरकार की ओर से पं० जगतनारायण मुल्ला इन मुकदमों की पैरवी कर रहे थे। उनको रोज 500 रु० मिलते थे। अभियुक्तों की ओर से उत्तर प्रदेश के नेता पं० गोविन्दवल्लभ पन्त, बहादुर जी, चन्द्रभान गुप्त, मोहनलाल सक्सेना आदि कई प्रख्यात वकील थे ···बाद को दो फरार अर्थात् अशफाक उल्ला और बख्शी गिरफ्तार हुए किन्तु उनका मुकदमा अलग चलाया गया।

—श्री मन्मथनाथ गुप्त

इस मुकदमे में रामप्रसाद 'बिस्मिल', राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी, रोशन-सिंह तथा अशफाक उल्ला खां को फांसी की सजा सुनाई गई।

शचीन्द्रनाथ सान्याल को काले पानी की तथा मन्मथनाथ गुप्त को 14 साल की सजा हुई।

योगेशचन्द्र चटर्जी, मुकन्दीलालजी, गोविन्द चरणकर, राजकुमार सिंह, रामकृष्ण खत्री को दस-दस साल की सजायें हुई। विष्णशरण

दुब्लिश और सुरेशचन्द्र भट्टाचार्य को सात-सात साल की सजा हुई। भूपेन्द्रनाथ सान्याल, रामदुलारे त्रिवेदी और प्रेमकृष्ण खन्ना को पांच-पांच साल की सजा हुई।

काकोरी-बन्दियों को छुड़ाने की योजना असफल रही और तब पं० रामप्रसाद बिस्मिल का काव्यमय संदेश आया—

मिट गया जब मिटने वाला, फिर सलाम आया तो क्या?

दिल की बरबादी के बाद, उनका पयाम आया तो क्या?

परन्तु वे सब बचाए न जा सके। फांसी की घोषणा हो ही गई और तिथियां भी निश्चित हो गईं।

जब यह खबर जनता में प्रसारित हुई तो एक भारी आंदोलन उठ खड़ा हुआ। जनता ने इसका विरोध करते हुए सजा रद्द कराने के लिए केन्द्रीय असेम्बली के सदस्यों से अपील की।

सदस्यो ने एक प्रार्थना-पत्र पर हस्ताक्षर कर लाट साहब के सामने पेश किया। फांसी की तिथियां दो बार टल भी गईं, जनता को भरोसा हुआ कि ये लोग बच जायेंगे।

परन्तु ब्रिटिश सरकार अपने को चुनौती देने वालों को जिन्दा क्यों-कर छोड़ देती? फांसी की सजा नहीं टली।

भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के इतिहास का वह क्रूर, रोमांचक और हृदय विदारक दिन।

17 दिसम्बर, 1917 को सर्वप्रथम राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी को गोंडा जेल में फांसी दी गई।

फांसी के कुछ दिन पहले उन्होंने अपने एक मित्र को पत्र लिखा था, जिसका आशय इस प्रकार था—'मालूम होता है कि देश की बलिवेदी को हमारे रक्त की आवश्यकता है। मृत्यु क्या है? जीवन की दूसरी दिशा के अतिरिक्त और कुछ नहीं। यदि यह सच है कि इतिहास पलटा खाया करता है तो मैं समझता हूं हमारी मृत्यु व्यर्थ नहीं जाएगी, सबको अन्तिम नमस्कार।

आपका—राजेन्द्र'

पं० रामप्रसाद बिस्मिल को गोरखपुर जेल में 19 दिसम्बर को फांसी हुई।

बिस्मिल के चेहरे पर शिकन भी नहीं आई। अपनी माता को एक पत्र लिखकर उन्होंने देशवासियों के नाम संदेश भेजा।

और फांसी के तख्ते की ओर जाते हुए उच्च स्वर में 'भारत माता' और 'वन्देमातरम्' की जयकार करते रहे।

चलते समय उन्होंने कहा—

मालिक ,तेरी रजा रहे और तू ही रहे,
बाकी न मैं रहूं, न मेरी आरजू रहे।
जब तक कि तन में जान, रगों में लहू रहे,
तेरा हो जिक्र या, तेरी ही जुस्तजू रहे।

और फांसी के दरवाजे पर पहुंचकर कहा—

I WISH THE DOWNFALL OF BRITISH EMPIREO

(मैं ब्रिटिश साम्राज्य का विनाश चाहता हूं।)

फिर उन्होंने फांसी के तख्ते पर खड़े होकर प्रार्थना की और मन्त्र का जाप किया, तत्पश्चात् फन्दे पर झूल गये।

ठाकुर रोशन सिंह को इलाहाबाद जेल में फांसी दी गई।

उन्होंने अपने एक मित्र को पत्र लिखते हुए कहा था, हमारे शास्त्रों में लिखा है, जो आदमी धर्मयुग में प्राण देता है, उसकी वही गति होती है जो जंगल में रहकर तपस्या करने वालों की।

उनका गीत था—

जिन्दगी जिन्दादिली को जान ऐ रोशन,
वरना कितने मरे और पैदा होते जाते हैं।

और अशफाक उल्ला को फैजाबाद जेल में फांसी दी गई। वह बहुत खुशी के साथ कुरान शरीफ का बस्ता कन्धे पर लटकाए हाजियों की भांति 'लवेक' कहते और कलाम पढ़ते फांसी के तख्ते पर गए। तख्ते का उन्होंने चुम्बन किया और उपस्थित जनता से कहा, 'मेरे हाथ इन्सानी खून से कभी नहीं रंगे, मेरे ऊपर जो इल्जाम लगाया गया वह गलत

है, खुदा के यहां मेरा इन्साफ होगा।' फिर वे फन्दे पर झूल गए।

उनका अन्तिम गीत था—

तंग आकर हम भी उनके जुल्म के बेदाद से।
चल दिए सुए अदम जिन्दाने फैजाबाद से।

19 दिसम्बर को उनकी लाश जब मैं मालगाड़ी से शाहजहांपुर ला रहा था तो बालामऊ स्टेशन पर एक साहब सूट-बूट पहने गाड़ी के अन्दर आए और कहा, 'हम शहीद-आजम को देखना चाहते हैं।'

मैंने चेहरे से कफन उठाया और उन्होंने तीन बार अभिवादन किया। लालटेन उनके हाथ में थी और आंसू बराबर बह रहे थे।

उन्होंने कहा, 'कफन बन्द कर दो, मैं अभी आता हूं।'

और वे आज़ाद थे। —रियासत उल्ला

केन्द्रीय दल का संगठन

8 दिसम्बर 1828 को भारत के प्रमुख क्रांतिकारियों की एक सभा फिरोजशाह जिले के खण्डहरों में हुई।

इस सभा का आशय भिन्न-भिन्न प्रांतों के दल को एक सूत्र में बांधकर संगठन को दृढ़ करना था।

इसमें देश के प्रायः सभी प्रमुख क्रान्तिकारियों ने भाग लिया।

इसमें शिववर्मा, सुखदेव, ब्रह्मदत्त, विजयकुमार, सुरेन्द्रनाथ पांडेय और कुन्दनलाल आदि ने भाग लिया और एक केन्द्रीय समिति का गठन किया गया। इस समिति में सात सदस्य रखे गए—

'सरदार भगतसिंह, चन्द्रशेखर आज़ाद, सुखदेव, शिववर्मा, विजयकुमार, फणीन्द्रनाथ घोष और कुन्दनलाल।

इस सभा में फणीन्द्रनाथ घोष बिहार के, सुखदेव और भगतसिंह पंजाब के, विजयकुमार सिंह और शिववर्मा उत्तर प्रदेश के संगठनकर्ता चुने गए।

चन्द्रशेखर आजाद यों तो सारे दल के ही अध्यक्ष थे, किन्तु वह विशेषकर सेना-विभाग के नेता चुने गए। आतंकवाद करने का निश्चय किया गया। काकोरी-युग में समिति का नाम 'हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन' था। यह नाम कम अर्थव्यंजक समझा गया, यानि यह समझा गया कि इस नाम से दल का उद्देश्य पूर्ण रूप से व्यक्त नहीं होता। ...तदनुसार दल का नाम 'हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन आर्मी' यानि 'हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातान्त्रिक सेना' रखा गया।...दल की ओर से कई जगह बम बनाने के कारखाने खोले गए जिनमें से लाहौर, सहारनपुर, कलकत्ता और आगरे में बड़े कारखाने स्थापित हुए।'

—मन्मथनाथ गुप्त

'दिल्ली में निश्चय किया गया कि अब केवल ऐसे ही मामलों को हाथ में लिया जाए जिनका सार्वजनिक महत्त्व हो। इस उद्देश्य से सबसे पहले चुना गया साइमन कमीशन को! साइमन कमीशन के प्रति जनता में प्रबल रोष एवं असंतोष उबल रहा था। साइमन कमीशन के आने पर बम्बई में मजदूरों की जो व्यापक हड़ताल हुई थी, उसमें अपना सहयोग प्रकट करना दल आवश्यक समझता था।'

—श्री यशपाल

सन् 1928 के आरम्भ में ही शासन-सुधार सम्बन्धी मांग के सम्बन्ध में भारतवर्ष की अवस्था की जांच करने के लिए 'साइमन कमीशन' भारत आया। इस कमीशन के प्रधान इंग्लैंड के सुप्रसिद्ध वकील सर जान साइमन थे।

कांग्रेस सहित सभी संस्थाओं ने इस कमीशन का विरोध किया।

'साइमन लौट जाओ' एवं 'साइमन गो बैक' के नारों से सारा भारतवर्ष गूंज उठा।

और 20 अक्तूबर, 1928 को यह कमीशन लाहौर पहुंचा।

लाला लाजपतराय का बलिदान

लाहौर में कमीशन के विरोध में भारी जुलूस निकाला गया और इस जलूस का नेतृत्व किया, पंजाब केसरी वयोवृद्ध लाला लाजपतराय ने।

चारों तरफ काले झंडों और नंगे सिरों की भीड़-ही-भीड़ दीख पड़ती थी।

जुलूस को छिन्न-भिन्न करने के लिए लाहौर पुलिस सुपरिटेंडेंट स्टाक ने जनता पर लाठी चार्ज का हुक्म दिया।

मगर जुलूस आगे बढ़ता रहा, लाठियां बरसती रहीं और नारे धरती-आकाश गुंजारते रहे।

तभी डी० एस० पी० सांडर्स की एक लाठी लालाजी पर भी बरस उठी। लालाजी की छतरी टूट गई, उनके कंधे पर चोट आई।

नवयुवक अब भी बड़े जोश-खरोश से लालाजी के गिर्द उपस्थित थे और जुलूस आगे बढ़ाने को कटिबद्ध थे, परन्तु लालाजी ने उन्हें आदेश दिया—'पुलिस की इस जालिमाना हरकत की मुखालफत में मुजाहिरे को मुअत्तल कर दिया जाय।'

फिलहाल प्रदर्शन स्थगित हो गया।

और उसी दिन शाम को मोरी दरवाजे पर एक विराट सभा को सम्बोधित करते हुए लालाजी ने कहा—'जो सरकार निहत्थी प्रजा पर इस तरह के जालिमाना हमले करती है, उसे तहजीबयाफ्ता सरकार नहीं कहा जा सकता और ऐसी सरकार कायम नहीं रह सकती, ...मैं आज चुनौती देता हूं कि मेरी छाती पर किया गया लाठी का एक-एक प्रहार ब्रिटिश सरकार के कफन की कील बनेगा।'

वहां उपस्थित अंग्रेज अफसरों को लक्ष्य कर लालाजी ने अपनी बात अंग्रेजी में दुहरायी—I DECLARE THAT THE BLOWS STRUCK AT ME WILL BE THE LAST NAILS IS THE COFFIN OF THE BRITISH 'RULE IN INDIA'

और 17 नवम्बर, 1928 को प्रातः लालाजी का देहावसान हो गया। सम्पूर्ण भारत में शोक की लहर व्याप्त हो गई और लालाजी पर किया गया प्रहार वास्तव में ब्रिटिश सरकार के कफन की कील बन गया।

देश में इस मृत्यु से बहुत खलबली मची। इस समय क्रान्तिकारी समिति के कई सदस्य लाहौर में मौजूद थे। उन्होंने जल्दी से अपनी एक सभा बुलाई जिसमें यह तय हुआ, कि चूंकि सारे भारतवर्ष की मांग है, इसीलिए लाला लाजपतराय की मृत्यु का बदला लिया जाए। पं० जवाहरलाल नेहरू इस प्रसंग पर यों लिखते हैं—'जब लालाजी मरे तो उनकी मृत्यु अनिवार्य रूप से, उन पर जो हमला हुआ था, उसके बाद संयुक्त हो गई और दुःख से कहीं बढ़कर देश के लोगों में आग भड़क उठी।'

—श्री मन्मथनाथ गुप्त

लालाजी की मृत्यु का बदला लेने से पूर्व आज़ाद के नेतृत्व में नेशनल बैंक लूटने की योजना बनाई गई, परन्तु यह असफल रही।

दल ने यह निश्चय किया कि लाला लाजपतराय की हत्या के लिए जिम्मेदार पुलिस अफसर को मार डाला जाए। तदनुसार जयगोपाल मिस्टर सांडर्स की टोह में रहने लगा। हत्या के लिए दल के चार व्यक्ति नियुक्त किए गए—चन्द्रशेखर आज़ाद, भगतसिंह, राजगुरु एवं जयगोपाल।

और फिर इन चारों क्रान्तिकारियों ने 17 दिसम्बर, 1928 को ईंट का जवाब पत्थर से दिया।

सांडर्स-वध के अगुआ थे हिसप्रस के कमाण्डर-इन-चीफ चन्द्रशेखर आज़ाद।

लाहौर से पलायन

सांडर्स की हत्या से पंजाब की पुलिस पागल हो उठी। पुलिस के लिए यह एक जबरदस्त चुनौती थी।

सारे पंजाब में पुलिस, सी० आई० डी० का जाल बिछ गया। उग्र और गर्म विचारधारा की संस्थाओं के संदिग्ध कार्यकर्त्ता बन्दी बनाए जाने लगे। तलाशियां, धर-पकड़ और छापामारी शुरू हो गई।

पुलिस हत्याकारियों की खोज में जमीन-आसमान के कुलावे मिला रही थी।

शाम होते-होते दल के लोग इधर-उधर छिपते-छिपाते 'मजंग' वाले मकान में इकट्ठे हुए। कोई भावी कार्यक्रम निश्चित करने से पहले भोजन की समस्या उपस्थित हुई। उस समय दल के पास इतना भी पैसा न था कि भोजन की समस्या हल हो सके।

आज़ाद ने कहीं से दस रुपए की व्यवस्था कर सबको भोजन कराया। इसके बाद दल के लोगों को लाहौर छोड़कर जहां-तहां जाने का आदेश हुआ।

इसके लिए तुरन्त काफी रुपयों की आवश्यकता थी। जहां-जहां मिलने की संभावना थी, वहां-वहां लोग भेजे गए। यशपाल, डॉ० गोपीचन्द के यहां और सुखदेव, दुर्गा भाभी (श्रीमती भगवतीचरण) के यहां भेजे गए। पुलिस को चकमा देकर दुर्गा भाभी के साथ भगतसिंह को लाहौर से निकालने की योजना थी।

दुर्गा भाभी (श्रीमती भगवतीचरण) ने मेम का रूप धारण किया। भगतसिंह ने केशों को छंटवा लिया था और दाढ़ी भी सफाचट कर ली थी। उन्होंने ओवरकोट, पैण्ट और हैट पहन कर अंग्रेज साहब की भूमिका अदा की। राजगुरु नौकर के रूप में साथ थे।

और स्टेशन पर तिल-तिल बिछी पुलिस सी० आई० डी० को चकमा देकर ये लोग कलकत्ता जाने के लिए कलकत्ता मेल पर सवार

हुए।

किसे हिम्मत थी जो 'साहब' से कुछ पूछ-ताछ करता? पुलिस टापती रही और सांडर्स को यमपुरी पहुंचाने वाले पलायन कर गए।

दल के अन्य सदस्य पहले ही यहां-वहां जा चुके थे।

और उसी गाड़ी में रामनामी दुपट्टा ओढ़े एक नवयुवक महात्मा भी यात्रा कर रहे थे।

उन्हें देखकर उनकी 'असली बनावट' पर स्वयं उनके अनुगामी 'साहब' (भगतसिंह) बड़े अचरज से फुसफुसा उठे—'अरे पण्डित जी?'

मगर और कोई न जान सका कि महात्माजी के भेष में आज़ाद सफर कर रहे हैं।

आगरा में

केन्द्रीय समिति के निश्चय के अनुसार आगरा में बम बनाने का कारखाना आरम्भ किया गया। काम जोर-शोर से आरम्भ हो गया। दो मकान, दो भिन्न मुहल्लों में ले लिए गए। सुखदेव और कुन्दनलाल बम बनाने में दक्ष थे। खोल तैयार करने की व्यवस्था अन्य स्थान पर की गई।

आगरे का मकान क्रान्तिकारियों के गुप्त निवास के साथ ही विचार-विमर्श और साहित्य पठन-पाठन का भी केन्द्र था।

आज़ाद को अच्छी-अच्छी पुस्तकें लाकर साथियों को पढ़ाने का बहुत शौक था, परन्तु उपन्यास या यौन विषय-संबंधी पुस्तकें देखकर उन्हें बहुत चिढ़ होती थी। ब्रह्मचर्य का एक बहुत ही रूढ़िवादी आदर्श उस समय तक आज़ाद के मस्तिष्क में था।···आज़ाद को नारी-प्रेम और सौंदर्य की चर्चा से ही चिढ़ हो गई थी। कसरत स्वयं करने और दूसरों को कराने का भी उन्हें शौक था। यदि कोई और काम न हो तो

आज़ाद का मन बहलता था, लगातार बातचीत करने या हवाई पिस्तौल लेकर किसी बारीक चीज पर निशाने का अभ्यास करते रहने से।'

एक दिन आज़ाद की चिढ़ का आनन्द लेने के लिए किसी साथी ने स्त्री-प्रसंग छेड़ दिया।

आज़ाद तुनक उठे—'फिर चुम्बक की बात !. यह साला चुम्बक जिसे लगा ले डूबा। सिपाही को औरत से क्या मतलब ?'

और प्रसंग बदलने के लिए वे भगतसिंह से अपना प्रिय गीत'''मां हमें विदा दो जाते हैं हम विजयकेतु फहराने आज' गाने का आग्रह करते।

एक दिन राजगुरु कहीं से एक कलेण्डर लाए जिसमें एक सुन्दर युवती का चित्र बना था। कलेण्डर उन्होंने कमरे में टांग दिया।

आज़ाद उस समय कहीं बाहर गए थे। लौटकर आए तो चुहल लेने के लिए वैशम्पायन ने कलेण्डर की ओर संकेत कर कहा, ''भैया देखो, ये कौन लाया ?'

कलेण्डर का चित्र देखते ही आज़ाद की त्यौरियां चढ़ गईं। तुरन्त ही उसे खींचकर फाड़ फेंका।

राजगुरु कहीं से लौटे तो देखा कि उनका कलेण्डर नदारद है। चिल्ला उठे, 'मेरा कलेण्डर क्या हुआ ?'

वैशम्पायन ने होंठों की हंसी दबाकर फर्श पर बिखरे टुकड़ों की ओर इशारा किया।

'अरे ! ये किसने किया ?' राजगुरु गुर्राए।

'हमने किया !' आज़ाद ने तुरन्त ही जवाब दिया।

'आपने क्यों फाड़ डाला ? हम इसे कितने शौक से लाए थे।'

'हमें-तुम्हें ऐसी तस्वीरों से क्या मतलब !' आज़ाद ने डांट लगाई।

राजगुरु उदास स्वर में बोले, 'वाह इतनी खूबसूरत थी ?'

आज़ाद बोले—'हमें-तुम्हें खूबसूरत से क्या मतलब ?'

'तो जो खूबसूरत होगा उसे फाड़ डालोगे, तोड़ डालोगे ?' राज-

गुरु बोले।

'हां तोड़ डालेंगे।' आज़ाद ने सीना तानकर जवाब दिया।

'तो जाकर ताजमहल को भी तोड़ डालो।' राजगुरु बोले।

'हां तोड़ डालेंगे, जब हमारा वश चलेगा।' आज़ाद ने तैश में उत्तर दिया।

इस पर अन्य साथी हंस दिए। वातावरण मनोरंजन में बदल गया।

'स्त्रियों के सम्बन्ध में आज़ाद अपने व्यक्तिगत जीवन में तो सदा एक नैष्ठिक ब्रह्मचारी ही रहे। पहले वे दल में स्त्रियों के प्रवेश के विरुद्ध ही थे और इसलिए थे कि उनके नेतृत्व के पूर्व यही परम्परा थी, परन्तु बाद में उनके नेतृत्व में स्त्रियों ने दल में काम किया और खूब अच्छी तरह किया।···अन्तिम दिनों में आज़ाद बड़े उत्साह से दल की सभी सदस्याओं को गोली चलाना, निशाना मारना आदि सिखाते थे।···स्त्रियों में उनका व्यवहार बड़ा सरल और आत्मीयतापूर्ण होता था। यह सब होते हुए भी इस बात के घोर शत्रु ही थे कि कोई दल का सदस्य स्त्रियों के प्रति अनुचित रूप से आकृष्ट हो। किसी प्रकार की यौन कमजोरी तो उनके लिए असह्य ही थी।

आज़ाद ने मुझे एक व्यक्ति के यहां शरण दिला दी थी। एक दिन उस आदमी ने, जिसके यहां मैं रह रही थी, एक गन्दी तस्वीर मेरी किताब के बीच में रख दी।

ज्योंही मैंने किताब खोली वह तस्वीर मुझे दीख पड़ी, मैंने तुरन्त ही किताब बन्द कर दी। वे हज़रत वहीं खड़े थे, बोले, 'आपने किताब क्यों बन्द कर दी?'

मैं उस समय चुप रह गई। भैया शाम को मिलने आए, मैंने सारा किस्सा उन्हें सुना दिया। उसे सुनते ही भैया आग-बबूला हो गए, भैया का हाथ तमंचे पर था। खैरियत यह हुई कि उस वक्त वह आदमी बाहर गया हुआ था। मैंने भैया को समझाया कि इस वक्त गोली चला

देने से तो सारा काम बिगड़ जाएगा।

क्रोध कुछ शांत होने पर भैया बोले, 'दीदी, बस बीस मिनट के अन्दर सामान लेकर इस घर से निकलो !'

—दीदी सुशीला, आज़ाद की सहयोगिनी

संस्कारवश आज़ाद का खान-पान सादा और शाकाहारी था। वे शिकार खूब खेलते थे, मगर मांस नहीं खाते थे। बीड़ी-सिगरेट और अन्य मादक द्रव्यों से उन्हें सख्त घृणा थी। यह बात दूसरी थी कि पुलिस को चकमा देने के लिए जब-तब बीड़ी पीने का स्वांग रचते।

ऐसा कट्टर ब्राह्मणत्व था उनमें कि लहसुन-प्याज तक से परहेज था, मगर भगतसिंह आदि के संसर्ग से धीरे-धीरे उन्होंने समाजवादोन्मुख धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण को अपनाया और भारतीय समाजवादी प्रजातन्त्र सेना के सेनापति हुए।

बहुधा भगतसिंह उन्हें क्षत्रियों जैसे काम करने वालों के लिए मांस खाने की अभीष्टता, उपयोगिता, नीतिमत्ता पर लेक्चर झाड़कर चिढ़ाया करते थे।

उनकी बहस से प्रभावित होकर आज़ाद कच्चा अण्डा खाने लगे।

एक बार उन्हें इस तरह अंडे का सेवन करते देखकर भगवानदासजी ने अचरज से पूछा, 'पण्डितजी, यह क्या ?'

इस पर आज़ाद ने भगतसिंह का कथन दुहराया, 'अंडे मे कोई हर्ज नहीं है, वैज्ञानिकों ने तो इसे फल जैसा ही बताया है।'

भगवानदास जी ने मुस्कराते हुए चुटकी ली, 'अंडा फल है तो मुर्गी पेड़ के सिवा और कुछ नहीं हो सकती।'

इस तर्क पर भगतसिंह ने ठहाका लगाया। आज़ाद मधुरता से झल्लाए, 'चल बे, एक तो हमें अण्डा खिला रहा है ऊपर से बातें बना रहा है।'

आज़ाद को खिचड़ी बहुत पसन्द थी। जब खिचड़ी बनती तो

कुतूहल के लिए 'शरारतन' भगतसिंह उसमें गोश्त के टुकड़े डलवा देते।
खाते समय आज़ाद गोश्त के टुकड़े अलग कर खिचड़ी खा जाते और भगतसिंह पर बिगड़ते, 'साला (आज़ाद का तकियाकलाम) हमें गोश्त खिला रहा है।'

आगरा में आज़ाद के पास एक मुख्य कार्य साथियों को पिस्तौल का निशाना सिखाने का भी था। वे बारी-बारी से दो-तीन को साथ लेकर बुन्देलखण्ड के जंगलों में चले जाते और घण्टों सिखाया करते।

यह कार्य उनके लिए मनोरंजक और सुखदायक था। जब वे स्वयं किसी बारीक चीज पर सच्चा निशाना मार लेते तो उनकी प्रसन्नता का अन्त न होता।

निशाना सिखाने के सम्बन्ध में यशपाल जी अपने प्रसंग में कहते हैं, 'निशाना सिखाने के "नके शौक के कारण मुझे भी काफी जहमत झेलनी पड़ती। लक्ष्यवेध में अनुपम दक्षता प्राप्त करने के लिए मुझे कोई विशेष उत्साह कभी नहीं हुआ। मैं वश चलते आज़ाद को भी इस शौक से निरुत्साहित करने की कोशिश करता। आज़ाद धमकाते थे, 'अबे दांगड़ूस पिटपिटिया कोट की जेब में लिए फिरते रहोगे। प्रैक्टिस नहीं होगी तो वक्त पर दो हाथ दूर गोली जाएगी और दांत निपोरते रह जाओगे।' निशानेबाजी आज़ाद की दृष्टि से हमारी सैनिक शिक्षा का आवश्यक अंग ही नहीं, बल्कि उनका अपना चस्का भी तो था।'

आज़ाद का व्यक्तित्व

उनके व्यक्तित्व, त्याग, लगन और चरित्र से हर व्यक्ति प्रभावित था।...वे अनुशासन को पूरी तरह से मानने वाले थे। उनके अनुशासन का स्तर इतना ऊंचा था कि प्रायः साथियों को बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता था। उनका चरित्र दहकते हुए

अंगारे के समान ज्योतिर्मय और शुद्ध ज्योत्स्ना के समान उज्ज्वल था। स्त्री जाति का वे बड़ा सम्मान करते थे। उन दिनों एक अंग्रेज सम्पादक क्रान्तिकारियों के विरुद्ध बहुत लिखा करता था। इस पर एक साथी ने कहा कि सम्पादक को मार दिया जाए।

उसने यह योजना भी पेश की कि वह सम्पादक अमुक समय पर मोटर से गुजरता है, उसको खत्म कर दिया जाए।

इस पर भैया क्रुद्ध होकर बोले, 'स्त्रियों और बच्चों पर हाथ उठाना, क्या यही क्रान्तिकारियों का अर्थ है ?'

पार्टी में उनका आदेश था कि कोई व्यक्ति 'स्त्री पर बुरी नजर नहीं डाल सकता, वरना वह आज़ाद की पहली गोली का शिकार बनेगा।

जहां उनमें कठोरता थी, वहां उनमे कोमलता भी थी। उनका रहन-सहन सादा था। खाना तो बिल्कुल रूखा-सूखा पसन्द करते थे। उन्हें खिचड़ी बहुत पसन्द थी, क्योंकि इसमें कम-से-कम खटपट पड़ती थी।

सोते साथियों को जगाकर वे योजनाओं पर विचार करने लगते थे।

मैंने कभी शिकायत की तो ताना देते हुए बोले—'यह नमक सत्याग्रह नहीं कि झण्डा उठाया, नारे लगाए और जेल चले गए। ये क्रान्तिकारियों की योजनाएं हैं। इन पर काफी विचार करना पड़ता है।'

जनता का पैसा वे धरोहर समझते थे, अपने ऊपर कभी उन्होंने पांच पैसे भी खर्च नहीं किए, वे प्रायः तीसरे दर्जे में सफर करते थे। जब उनसे कहा गया कि खतरे से बचने के लिए वे दूसरे दर्जे में सफर किया करें तो उन्होंने उत्तर दिया—

'जनता आज विश्वास करती है कि आज़ाद पैसा बर्बाद नहीं करेगा। कल हम दूसरे दर्जे में चलेंगे और जनता देखेगी तो उसका विश्वास उठ जाएगा।'

वे नहीं चाहते थे कि पार्टी का एक भी सदस्य कभी सिनेमा आदि

खेल देखें, क्योंकि इस प्रकार जनता के धन का दुरुपयोग होता है। वे अपने पास एक या दो जोड़ों से अधिक कपड़े नहीं रखते थे। भैया मोटे तो थे ही, इसलिए वे प्रायः लाला की शक्ल बनाकर चलते थे। उनकी बुद्धि बड़ी तीव्र थी, जिसकी वजह से पुलिस के गुप्तचर भी भय खाते थे।

—दीदी सुशीला

आज़ाद स्वयं कहते, 'जिस राष्ट्र ने चरित्र खोया उसने सब कुछ खोया।'

आज़ाद का आदर्श चरित्र था, इसलिए वे सफल नेता थे। स्वाधीनता का यह पागल पुजारी अपने कर्त्तव्य के प्रति निष्ठावान और उसका पालन करने-कराने में वज्र से भी कठोर था।

—वैशम्पायन

वे बड़ी निर्भीकता और उत्साह के साथ कहते, 'मैं जीवन की अन्तिम सांस तक लड़ता रहूंगा।'

उनका नारा था—

दुश्मन की गोलियों का
हम सामना करेंगे,
आज़ाद हैं, आज़ाद हैं
आज़ाद ही रहेंगे।

एक दिन भगतसिंह ने अत्यन्त आग्रह से पूछा—

'पण्डितजी, इतना तो बता दीजिए, आपका घर कहां है और वहां कौन-कौन हैं? ताकि भविष्य में हम उनकी आवश्यकता पड़ने पर सहायता कर सकें तथा देशवासियों को एक शहीद का ठीक से परिचय मिल सके।'

इतना सुनना था कि आज़ाद के माथे पर बल पड़ गए और वे बिगड़ पड़े, 'इतिहास में मुझे अपना नाम नहीं लिखवाना है और न परिवार वालों को किसी की सहायता चाहिए। अब कभी यह प्रसंग

मेरे सामने नहीं आना चाहिए। मैं इस तरह नाम, यश और सहायता का भूखा नहीं हूं।'

असेम्बली में धड़ाका

अंग्रेज सरकार का नया दमन-चक्र।

सार्वजनिक सुरक्षा कानून (PUBLIC SAFETY BILL) और औद्योगिक विवाद कानून (TRADES DISPUTES BILL) बनाने का प्रयत्न।

हिन्दुस्तानी समाजवादी प्रजातन्त्र सेना के सदस्य भली भांति जानते थे कि कांग्रेस के उदारपन्थियों और जनता द्वारा इन दोनों बिलों का विरोध होगा। इन कानूनों के पास होने का मतलब था, जनता की स्वतन्त्रता की भावना का हनन।

केन्द्रीय समिति ने यह निश्चय किया कि जिस समय असेम्बली में बहुमत द्वारा इस बिल का विरोध किया जाए और वायसराय द्वारा इसे कानून बना देने की घोषणा की जाए, असेम्बली पर बम फेंककर दमनकारी नीति के प्रति विरोध प्रकट किया जाए।

इस योजना की सफलता के लिए हिसप्रस का एक केन्द्र दिल्ली में स्थापित किया गया था।

इस काम के लिए पहले भगतसिंह और आज़ाद का नाम लिया गया, किन्तु सदस्यों ने इसका विरोध किया क्योंकि भविष्य के लिए उनका सुरक्षित रहना आवश्यक था।

केन्द्रीय समिति की बैठक में अन्ततोगत्वा भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त को इस काम के लिए निश्चित किया गया।

आज़ाद ने भी असेम्बली की गैलरी का निरीक्षण किया और इस निर्णय पर पहुंचे कि बम फेंकने वाले साथियों को सुरक्षित निकाल लाना कठिन नहीं, किन्तु इसके लिए एक मोटर की आवश्यकता

होगी।

परन्तु भगतसिंह बम फेंकने के बाद भागने के पक्ष में नहीं थे। उनका कहना था—'असेम्बली में बम फेंककर केवल पर्चा बांट देने से ही जनता के सम्मुख अपने उद्देश्य को पर्याप्त रूप से स्पष्ट नहीं कर सकेंगे। जनता हिसप्रस को कुछ बिगड़े दिमाग खूनी नौजवानों की टोली समझ बैठेगी। आवश्यक यह है कि बम फेंकने वाले साथी बचने की कोशिश न करें, बम फेंकने के साथ वे साम्राज्यवाद-विरोधी प्रदर्शन करें और बाद में मुकदमा चलने पर अदालत में अपनी नीति का स्पष्टीकरण करें। इस प्रकार हमारे कार्यक्रम और उद्देश्य जनता के सामने आ सकेंगे।'

8 अप्रैल, 1929।

असेम्बली में पब्लिक सेफ्टी बिल विचारार्थ प्रस्तुत था। दोनों ओर से जोरदार वाद-विवाद हो रहा था।

दो नवयुवक बड़ी सावधानी के साथ मुख्य द्वार पार कर गैलरी से होते हुए ऊपर ऐसी जगह जाकर बैठ गए जहां से नीचे फर्श पर सरकार के सदस्यों की जगह बिल्कुल सामने पड़ती थी।

ज्योंही सर शुस्टर वायसराय की विशेष स्वीकृति से बिल पास होने की घोषणा करने उठे, एकाएक भगतसिंह और दत्त अपने स्थान पर उठ खड़े हुए और असेम्बली की गैलरी में बम का धमाका किया, दत्त ने दूसरा बम फेंका।

इस रोमांचकारी धड़ाके से गैलरी में धुआं-ही-धुआं मंडरा उठा। लोग डरकर भागने लगे।

दिन-दहाड़े पुलिस सुरक्षा से घिरी असेम्बली पर बम का धड़ाका हंसी-ठट्टा न था।

भगतसिंह ने अपना पिस्तौल निकाल जान शुस्टर पर गोलियां चलाईं, मगर डेस्क के नीचे दुबक जाने के कारण वह बच गया।

भगतसिंह और दत्त चाहते तो वहां से नौ-दो ग्यारह हो सकते थे,

मगर वे हिले तक नहीं, वरन् बड़ी दृढ़ता के साथ नारे लगाए—

इन्कलाब जिन्दाबाद !

साम्राज्यवाद का नाश हो !!

दुनिया के मजदूरो एक हो !!!

उन्होंने हिसप्रस के लाल रंग के घोषणा-पत्र हाल में फेंक दिए। उक्त परचे में उनके उद्देश्य लिखित थे।

थोड़ी देर के बाद पुलिस दल आया और दोनों को गिरफ्तार कर लिया।

भारी चौकसी के साथ ये नई दिल्ली जेल में बन्दी बनाए गए। और उनकी गिरफ्तारी से आज़ाद को मर्मान्तिक पीड़ा हुई। बम फेंकने के बाद वे गिरफ्तार होने के पक्ष में न थे।

भगतसिंह की गिरफ्तारी ने उनका दाहिना हाथ तोड़-सा दिया।

मगर आज़ाद हतोत्साह होना क्या जानें ?

दुगने उत्साह से भावी कार्यक्रम की सफलता के प्रयत्न में जुट गए।

प्रथम लाहौर षड्यन्त्र के बाद

'प्रथम लाहौर षड्यन्त्र की गिरफ्तारियों के बाद दल काफी विध्वस्त हो चुका था, किन्तु सेनापति आज़ाद अपनी प्रचण्ड कर्म-शक्ति, विपुल उद्यम तथा कभी न टूटने वाले साहस के साथ मौजूद थे, अतएव दल का काम फिर से चलने लगा। इस जमाने के मुख्य कार्यकर्ताओं में कुछ स्त्रियां भी थीं। इनमें सबसे प्रमुख श्रीमती सुशीला दीदी और श्रीमती दुर्गा भाभी थीं। इसके अतिरिक्त यशपाल एक बहुत ही साहसी तथा सुलझे हुए क्रांतिकारी थे।'

—मन्मथनाथ गुप्त

इन्ही दिनों वायसराय की गाड़ी के नीचे बम विस्फोट की घटना

हुई और कांग्रेस ने इस घटना के लिए खेद प्रकट करते हुए वायसराय के प्रति शुभकामना प्रकट की।

आज़ाद का मस्तिष्क भगतसिंह और दत्त को जेल से छुड़ाने के प्रयास की रूपरेखा में सक्रिय था।

उधर सहारनपुर बम फैक्ट्री में शिववर्मा अत्यन्त चिन्ताग्रस्त और भयंकारी दिन गुजार रहे थे।

'मई की उस तपती शाम को छत पर लेटे-लेटे मैं आकाश में टिमटिमाते दो-चार तारों को देखता रहा। भगतसिंह और दत्त जेल में थे, क्या जेल में भी तारे उगते होंगे?' मैंने सोचा।

हाल ही में झांसी में आज़ाद से इन दोनों साथियों को छुड़ाने की योजना पर बात करके लौटा था। लाहौर में सुखदेव, किशोरलाल आदि भी पकड़े जा चुके थे और यह निश्चित था कि दिल्ली केस में सजा हो जाने के बाद भगतसिंह और दत्त को भी लाहौर ले जाया जाएगा। हम इसी अवसर पर रास्ते में उन्हें छुड़ाने का प्रयत्न करना चाहते थे, लेकिन सुखदेव की गिरफ्तारी के बाद समाचारपत्रों में लाहौर से जो समाचार आ रहे थे, वे उत्साहवर्धक न थे। चारों ओर तलाशियां हो रही थी, एक के बाद दूसरा साथी पकड़ा जा रहा था और हम सबने मिलकर इतनी मेहनत से संगठन का जो ताना-बाना खड़ा किया था, उसका एक-एक तार टूट रहा था···मेरे सामने आजाद की सूरत भी आई। मैं अपने साथ भगतसिंह और दत्त के चित्र (जो बाद के समाचारपत्रों में छपे) ले गया था। उन्हें देखकर उनकी आंखों में आंसू छलक आए और रुंधे कण्ठ से उन्होंने कहा, 'क्या सेनापति के नाते मेरा यही काम है कि नए साथी जमा करूं, उनसे परिचय, स्नेह और घनिष्ठता बढ़ाऊं और फिर उन्हें मौत के हवाले कर मैं ज्यों-का-त्यों बैठा रहूं? मैंने उन्हें इतना भावुक और विह्वल कभी नही देखा···।'

—शिववर्मा

एकाएक पुलिस ने सहारनपुर बम फैक्ट्री पर धावा किया। पुलिस ने बम बनाने की पुस्तक, बम की टोपियां और रिवाल्वर सहित शिववर्मा

और जयदेव को बम फैक्ट्री में ही गिरफ्तार कर लिया।

बम्बई में संगठन

भगतसिंह और दत्त को जेल से छुड़ाने की कोशिशें चल रही थीं आज़ाद, भगवतीचरण, यशपाल, धन्वन्तरी और वैशम्पायन सभी बहावलपुर रोड वाले बंगले में एकत्रित थे। सुशील दीदी और दुर्गा भाभी भी उपस्थित थीं।

इसी योजना के लिए बम बनाए गए थे। बम का परीक्षण करने के लिए भगवतीचरण सुखदेव और वैशम्पायन रावी के तट पर गए, बम अथवा ट्रैगर में कोई खराबी थी।

जैसे ही भगवतीचरण ने बम फेंकने के लिए दाहिना हाथ उठाया बम उनके हाथ में ही फट गया। उनके मुख से चीख निकल गई और वे पत्थरों की चहारदीवारी के पास गिर पड़े।

वैशम्पायन और सुखदेव ने दौड़कर उठाया।

भगवती के दोनों हाथ कटे हुए थे और खून का स्रोत फूट रहा था। खून और मांस की बोटियां हाथों से लटक रही थीं। उनका गला सूख रहा था। उन्होंने पानी मांगा, कोई बर्तन नहीं था। हारकर कपड़ा गीला कर उनके मुह में पानी टपकाया गया।

बम परीक्षण के लिए नाव पर बैठकर ये लोग शहर से दूर जंगल में आए थे।

भगवती की हालत बिगड़ रही थी।

वैशम्पायन ने सुखदेव से कहा, 'भैया (आज़ाद) को फौरन सूचना दे आओ। मै भगवती भाई के पास बैठता हूं!'

सुखदेवराज जैसे-तैसे आज़ाद के पास पहुंचे। उनकी दशा देखते ही आज़ाद ने किसी घटना का अनुमान लगा लिया।

भगवती भाई ने अपनी अन्तिम सांस के साथ कहा, 'भगतसिह को

छुड़ा न सके, काश यह दुर्घटना दो दिन बाद होती !'

अपने एक अत्यन्त कर्मठ, उत्साही और निर्भीक साथी की इस आकस्मिक मृत्यु से आज़ाद को गहरा धक्का पहुंचा ।

अविश्वास, गिरफ्तारियों और तलाशियों का दौर आरम्भ हुआ, देहली और कानपुर में स्थिति बहुत संकटमयी थी । आज़ाद ने यह तय किया कि एक केन्द्र बम्बई में स्थापित किया जाए और उसका निरीक्षण चिर-फरार पृथ्वीसिंह करें !

पृथ्वीसिंह गदर पार्टी के पुराने नेता, अत्यन्त हृष्ट-पुष्ट और कर्मठ व्यक्ति थे !

आज़ाद का संदेश लेकर धन्वन्तरी बम्बई गए और पृथ्वीसिंह से सम्पर्क स्थापित किया । धन्वन्तरी उन्हें यू० पी० लाए ।

इलाहाबाद एलफ्रेड पार्क में आज़ाद और पृथ्वीसिंह की पहली मुलाकात हुई, आज़ाद ने उनसे सहायता मांगी । पृथ्वीसिंह ने बम्बई प्रांत का उत्तरदायित्व सहर्ष उठा लिया ।

आज़ाद ने साथियों को सचेत किया—'बम्बई में संगठन खड़ा करो ! कोई ऐसा काम नहीं करना जिससे संगठन स्थापित करने में कठिनाई हो !'

ऐतिहासिक मुकदमा

'···मुकदमा चला और अर्से तक चला, बीच-बीच में अभियुक्तों की लम्बी भूख हड़तालें भी होती रहीं । यह मुकदमा ही अपने आप में एक ऐतिहासिक अभिनय था । कुछ मुखबिर भी बनाए गए, कुछ ने उल्टे-सीधे बयान देकर उन्हें बदला । कानून और न्याय के ढोंग पर सरकार ने लाखों रुपये इस मुकदमे पर खर्च किए । इस केस के लिए खास ट्रिब्यूनल नियुक्त किया गया था, बड़े-बड़े अच्छे वकील थे, शहर के जाने-माने नेताओं और कार्यकर्ताओं की बहुत बड़ी डिफेंस कमेटी बनी, प्राय:

सभी अभियुक्तों के रिश्तेदार भी वहां आते-जाते रहते थे।

सेन्ट्रल जेल के फाटक पर प्रतिदिन एक बरात का-सा जमघट होता। भगतसिह और दत्त चुपचाप जेल के अन्दर-ही-अन्दर कोर्ट में लाए जाते थे···पर ब्रिस्टल जेल के अन्य सभी अभियुक्तों को लेकर पुलिस की लारी आती थी। भगतसिंह व दत्त के कोर्ट में आते समय उनके 'इन्कलाब जिन्दाबाद' के नारों से आकाश गूंज उठता और जब तक सैकड़ों की संख्या में बाहर एकत्र जनता 'भगतसिह जिन्दाबाद' के नारे निनादित करती···!'

—दुर्गा भाभी

और 9 अक्तूबर को आज़ाद ने भगतसिह को फांसी की सजा दिए जाने का समाचार सुना।

उन्हें गहरा धक्का लगा।

बम्बई में उपस्थित दल के साथी इस समाचार से बौखला उठे।

तत्काल प्रतिशोध लेने को व्यग्र हो उठे।

भगतसिह को फांसी की सजा सुनाई ही जा चुकी थी, उन पर दूसरे षड्यन्त्र का मुकदमा चल रहा था। वकीलों की राय हुई कि यदि इस षड्यन्त्र का कोई दूसरा साधारण अभियुक्त जो फरार हो, अपने को अदालत में पेश कर दे तो मुकदमा और आगे खींचा जा सकता है, दीदी सुशीला ने इसके लिए अपने को उपयुक्त समझा, लेकिन दल के प्रधान की आज्ञा लेना नितांत आवश्यक था, इसलिए आज़ाद से मिलने के लिए दीदी सुशीला को प्रयाग जाना पड़ा।

आज़ाद ने उनके इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया। उसके पहले ही आज़ाद सुशीला दीदी और दुर्गा भाभी को एक प्रस्ताव देकर गांधी जी के पास भेज चुके थे कि यदि गांधी जी, भगतसिंह व दत्त की फांसी को मंसूख करा सकें और चलने वाले मुकदमों को वापस करा सकें तो आज़ाद भी अपनी पार्टी सहित अपने को गांधी जी के हाथों में सौंप सकते हैं, फिर वे चाहे जो कुछ करें। आज़ाद पार्टी भंग करने को तत्पर हो गए थे।

गांधी-इरविन वार्ता में ऐसी शर्तें रखना गांधी जी ने न उचित ही समझा और न सम्भव ही, इसलिए उन्होंने उत्तर दिया कि वे कोई गारंटी नहीं दे सकते है।

गांधी जी के ऐसे उत्तर से दल को बड़ी निराशा हुई, फिर भी प्रयत्न जारी रखे गए।

फरारी जीवन : पुलिस को चकमा

फरारी जीवन में ट्रेन में सफर करते समय या सड़क पर चलते समय इस तरह की बातों की सख्त मनाही थी जिनसे दल वालों की राजनैतिक रुचि का किसी को आभास मिल सके।

गाड़ी के सफर में क्रांतिकारी साधारण किस्से-कहानी मे अपना समय काटते थे। कभी कोई उपन्यास भी ले लेता।

आज़ाद, राजगुरु और भगवानदास माहौर झांसी जा रहे थे। समय काटने और संदेह से बचने के लिए आज़ाद ने भगवानदास से एक गाना सुनाने को कहा। भगवानदास अच्छा गा लेते थे।

भगवानदास ने गाना शुरू किया और आज़ाद दे दाद देना।

'क्या बात है ! खूब ! वाह-वाह ! खुश रहो दोस्त।'

प्रशंसा की झड़ी लगाते हुए आज़ाद गाने को और प्रोत्साहित करते रहे, कुछ देर तक राजगुरु भी आज़ाद के साथ दाद देते रहे। परन्तु जैसे ही गाड़ी ने बुन्देलखण्ड की सीमा में प्रवेश किया और वहां की ऊंची-नीची जमीन तथा पहाड़ियों पर बनी छोटी-छोटी गाड़ियों पर राजगुरु की निगाह पड़ी, वैसे ही उसने बाहर की ओर इशारा करते हुए कहा, 'पण्डित जी (आज़ाद) यह स्थान गुरिल्ला लड़ाई के लिए कितना उपयुक्त है।'

आज़ाद ने जान-बूझकर उनकी बातों को सुनी-अनसुनी करते हुए माहौर से कहा—'हां ! जब कफन में लाश निकली···! फिर क्या

हुआ !'

मगर राजगुरु को अपनी ही धुन लगी थी, उसने फिर कहा—'शिवाजी ने जिस स्थान को गुरिल्ला लड़ाई के लिए चुना था, वह भी बहुत कुछ ऐसा ही था।'

'तुम्हारे शिवाजी की···।' इस बार आजाद ने झल्लाकर पूरी गाली दे डाली और फिर माहौर की ओर मुखातिब होकर बोले, 'हां यार, फिर क्या हुआ ?···इस कदर रोया कि हिचकी बंध गई सैयाद की। कम्बख्त ने सारा मजा मिट्टी कर दिया।'

राजगुरु उनका आशय भांपकर खामोश हो गए।

झांसी पहुंचने पर आजाद ने राजगुरु को स्नेह से सम्बोधित करते हुए कहा—'साले आज तूने मुझसे शिवाजी को भी गाली दिलवा दी।'

फिर दो क्षण रुककर बोले, 'तेरा कहा ठीक है, वह स्थान गुरिल्ला लड़ाई के लिए उपयुक्त है, समय आने पर उसका इस्तेमाल भी होगा।'

···भाई चन्द्रशेखर आज़ाद को पकड़ने के लिए अंग्रेज सरकार ने कोई कसर उठा नहीं रखी थी। पुलिस उनके पीछे हाथ धोकर पड़ी थी। कानपुर, बनारस, झांसी और दिल्ली में उनके पकड़ने के लिए विशेष प्रबन्ध था। उनके पहचानने वाले व्यक्ति इन स्थानों पर तैनात थे, लेकिन फिर भी वे उनकी आखों मे धूल झोंककर निःसंकोच सफर किया करते थे।

वे जिस दिन अपने कहीं जाने की बात कहते, उस दिन सफर न करते थे···उस दिन कानपुर, दिल्ली या टूण्डला पर गाड़ी रोककर भली-भांति तलाशी ली गई, मगर वे हाथ न आए।

एक दिन दिल्ली से चले, साथ में एक व्यक्ति और था। सुबह सात बजे गाड़ी स्टेशन पर आई।

एकाएक गाड़ी रोक दी गई। सशस्त्र पुलिस ने दोनों ओर से गाड़ी को घेर लिया। आज़ाद को पहचानने वाले दो आदमी इंटर क्लास के गेट पर खड़े थे। मेन गेट पर ए० एस० शम्भूनाथ व टीका-

राम हाथ में पिस्तौल लिये खड़े थे।

उस दिन आज़ाद कोट और निकर पहने थे, सिर पर हैट था, पुलिस इन्स्पेक्टर मालूम होते थे।

असबाब कुली को देकर रवाना कर दिया।

आगे-आगे आज़ाद और पीछे-पीछे साथी चल पड़ा।

दोनों का एक हाथ टिकट, दूसरा हाथ जेब मे पिस्तौल सम्भाले था।

सावधानी के साथ गेट पर पहुंचकर टिकट बाबू को टिकट दिया और बाहर निकल गए।

और पुलिस ताकती रह गई।

एक दिन आज़ाद दल के साथियों के साथ टहलने निकले।

कानपुर मालरोड के पास, एक सज्जन लम्बी अचकन और पैंट डाले हुए बड़े तेजी के साथ उधर से निकले और आज़ाद को घूरकर देखा।

काशीराम ने कहा, 'भाई, विश्वेश्वरसिंह (इन्स्पेक्टर) मालूम होता है, हमको शायद पहचान लिया है।'

आज़ाद ने कहा, 'अच्छा तुम तैयार रहो, अब की बार आने पर देखा जाएगा।'

इतने में वे महाशय फिर लौटे और घूरकर देखने लगे।

आज़ाद ने जेब में हाथ डाला, कट् की आवाज़ हुई। आज़ाद की मुद्रा भयानक हो गई। सौम्यता का कहीं पता न था।

कट् की आवाज़ सुनते ही वे महाशय घूमे।

'ठहर !' आज़ाद ने ललकारा।

विश्वेश्वर सिंह दौड़े और आंखों से ओझल हो गए।

बाद को साथी ने पूछा—'भैया, अगर गोली चलाने के बाद भागना पड़ता तो हम लोग क्या करते ?'

आजाद ने मुस्कराते हुए कहा, 'पागल ! सड़क पर ये साइकिलें जिन पर गोरे दौड़े जा रहे थे, ये किस काम आती। हर काम में

होश कायम रखने की आवश्यकता होती है।'

कानपुर की ही बात है। सर्दी का मौसम होने के कारण ठण्ड से बचने के लिए हम लुधियाने की गरम सालें ओढ़ा करते थे, परन्तु इसमें रिवाल्वर रखने में असुविधा होती थी, इसीलिए गरम कोट बनने दिया था। कटरे से जब हम लोग चले थे तो ये ही चादरें ओढ़े हुए थे। स्टेशन जाते समय चौक से गुजरे तो भैया ने अचानक कहा, 'उस दर्जी के बच्चे के यहां भी तो होते चलें शायद उसने कोट बना दिया हो। गाड़ी में अभी बहुत देर है। इतनी जल्दी भी स्टेशन जाकर क्या करें ?'

कोट तैयार थे, पहन लिए गए और शालें ट्रंक में डाल दी गईं। ट्रंक में कार्बोलिक एसिड की बोतलें थीं। सब सुरक्षित दशा में गाड़ी में बैठ गए। जैसे ही गाड़ी चलने को हुई उसी समय पुलिस का एक सशस्त्र दस्ता उसी डिब्बे में आ बैठा।

कानपुर स्टेशन आ गया। मैंने खिड़की से बाहर की ओर देखा, प्लेटफार्म पर पुलिस वाले बन्दूकें लिये कतार मे खड़े थे।

मैंने भैया (आजाद) को बताया तो वे बोले—'आ रहा होगा कोई पुलिस अफसर, उसी के स्वागत के लिए खड़े है!'

फिर स्वयं उन्होंने एक दृष्टि प्लेटफार्म पर डाली, उसके बाद मुझसे कहा—'सावधान! जेब में रिवाल्वर पर हाथ रहे!' सामान की पेटी पर झल्लाए, 'एक मुसीबत साथ है! देखो, इसे कुली को देकर तुरन्त मेरे पीछे आना! यदि संघर्ष हो तो पीठ मिलाकर संघर्ष करना!'

अब तक गाड़ी प्लेटफार्म पर रुक चुकी थी, भैया पहले उतरे। मैंने कुली के सिर पर सामान दे उसका नम्बर ले लिया और हम सही-सलामत स्टेशन से निकल गए। कुली बक्सा लेकर देर से आया, भैया उस पर झल्लाये! 'टिकट कलेक्टर पूछ रहा था, यह किसका सामान है?' कुली ने कहा।

—वैशम्पायन

यह भी घटना कानपुर की ही है।

आज़ाद स्टेशन पर उतरे। एक मशहूर सी० आई० डी० वहां पर मौजूद था, उससे आंख बचाकर निकल भागना असंभव था।

आज़ाद को एक उपाय सूझा।

वे सीधे उस गुप्तचर के निकट पहुंचे और उसके कन्धे पर हाथ रखकर बोले, 'देखो फिजूल की बातें मत करो! तुम अपना काम करो और मै अपना!'

गुप्तचर सकपकाया-सा बुत बना खड़ा रह गया और आजाद साइकिल पर बैठकर नौ-दो ग्यारह हो गए।

पुलिस चन्द्रशेखर आजाद के नाम से ही कम्पित हो उठती थी। एक दिन हममे से एक साथी ने उनसे कह दिया, 'भैया आप तो मोटे होते जा रहे है, सरकार को आपकी कलाई के लिए शायद कोई विशेष हथकड़ी तैयार करनी पड़े!'

इतना कहना था कि भैया का चेहरा लाल हो गया।

उन्होंने तमक कर उत्तर दिया, 'आज़ाद की कलाई में अब हथकड़ी लगाना बिल्कुल असंभव है! एक बार सरकार लगा चुकी है, 'बाल्यकाल मे 15 बेतों की सजा के समय' अब तो शरीर के टुकड़े-टुकड़े हो जाएंगे, लेकिन जीवित रहते पुलिस बन्दी नही बना सकती।'

आज़ाद की मान्यता थी कि जब तक क्रांतिकारी के पास भरी पिस्तौल मौजूद है, मजाल कि पुलिस उसे जिन्दा गिरफ्तार कर सके।

आज़ाद, कानपुर एक विशेष प्रयोजन से आए थे। कानपुर में दल की एक मोटर कार थी। उसे बेचकर आर्थिक समस्या का समाधान करना था।

आज़ाद के माता-पिता की आर्थिक स्थिति अत्यन्त चिन्ताजनक थी, परन्तु देश की चिन्ता करने वाले आज़ाद के पास अपने परिवार की चिन्ता करने का समय कहां था।

श्री गणेशशंकर विद्यार्थी को जब आज़ाद के माता-पिता की दयनीय दशा ज्ञात हुई तो उन्होंने आज़ाद को बुलाकर दो सौ रुपए

माता-पिता को भेजने के लिए दिए।

मगर माता-पिता को भेजने के बजाए आज़ाद ने वे रुपए पार्टी के कामों में व्यय कर दिए।

दुबारा जब विद्यार्थी जी से मुलाकात हुई तो उन्होने रुपए भेजने के सम्बन्ध में पूछा।

आज़ाद गम्भीर हंसी के साथ कह पड़े, 'उन बूढ़ा-बूढ़ी के लिए पिस्तौल की दो गोलियां काफी हैं। विद्यार्थीजी इस गुलाम देश में लाखों परिवार ऐसे हैं जिन्हें एक समय भी रोटी नसीब नहीं होती। मेरे माता-पिता दो दिन में एक बार भोजन पा ही जाते है। वे भूखे रह सकते हैं, पर पैसे के लिए पार्टी के सदस्यों को भूखा नही मरने दूंगा। उनकी आवश्यकताओं को पूरा करना सर्वप्रथम कर्त्तव्य है। मेरे माता-पिता भूखे मर भी गए तो उससे देश को कोई नुकसान नही होगा, ऐसे कितने ही इसमें मरते-जीते है !'

यह कहकर आज़ाद विद्यार्थीजी के पास से उठकर चले गए और विद्यार्थीजी अचरज से उनकी ओर देखते रह गए।

बाद को नवीनजी ने आजाद के माता-पिता के लिए रुपये भिजवाये। जब यह बात आजाद को मालूम हुई तो उन्होंने मनोहरलाल जी (आज़ाद परिवार के हितैषी और सहयोगी) को बुलाकर बहुत डांटा, 'मेरे माता-पिता का भार तो आप संभाले हुए हैं, उन्हें दूसरों की आर्थिक सहायता की क्या आवश्यकता है ?'

परन्तु इसका मतलब यह नही कि आज़ाद को अपने माता-पिता से प्रेम नही था। वैशम्पायन से कहा करते थे, 'बच्चन ! यदि कभी छूटो तो कभी मेरे जन्म-स्थान भांवरा जाकर मेरी माता से अवश्य मिलना !' इतना कहकर वे दीर्घ निःश्वास ले उठते, मानो माता-पिता की स्मृति ने उनके हृदय को झकझोर दिया हो।

आज़ाद की व्याकुलता

पुलिस कानपुर मे गजानन सदाशिव पोद्दार को खोज रही थी। सन्देह और मुखबिरीवश वह डी० ए० वी० कालेज के होटल का चक्कर लगा रही थी।

किसी योजना को कार्यान्वित करने के उद्देश्य से यह कार्यक्रम निश्चित था कि शालिग्राम शुक्ल और सुरेन्द्रनाथ पाण्डेय कचहरी के चौराहे पर आज़ाद और वैशम्पायन की प्रतीक्षा करेंगे।

सुबह के धुंधलके में शालिग्राम शुक्ल और सुरेन्द्रनाथ पाण्डेय अपनी-अपनी साइकिल पर सवार रिवाल्वर गोली से लैस निकले।

लाल इमली के पास जो रेलवे थी, उसमे सुरेन्द्रनाथ पाण्डेय की साइकिल का चक्कर फंस कर खराब हो गया तो शालिग्राम ने कहा कि वे उसे डी० ए० वी० कालेज के छात्रावास में किसी लड़के के पास छोड़ जायेंगे और उसकी साइकिल ले जायेंगे।

सुरेन्द्रनाथ पाण्डेय कालेज के नुक्कड पर खड़े रहे और शालिग्राम चले गये।

थोडी ही देर में गोली चलने और 'बी अवेयर, बी अवेयर' की आवाज आई।

पुलिस ने पकडने की कोशिश की तो शालिग्राम ने गोली चलाई··· घटनास्थल था—आक्जिलरी फोर्स और डी० ए० वी० कालेज होस्टल के बीच की सड़क।

अंग्रेज पुलिस सार्जेंट और एक हैड कांस्टेबिल इसमे घायल हुए।

शालिग्राम को काबू में न आते देखकर पुलिस वालों ने गोली की वर्षा आरम्भ की।

आज़ाद ने स्थिति का अनुमान लगा लिया। शान्ति होने के बाद वैशम्पायन के साथ आज़ाद उधर से निकले।

मिल मजदूरों का आना-जाना शुरू हो गया था। शालिग्राम की लाश सड़क पर पड़ी देखी गई।

थोड़ी दूर पर खम्बे से एक साइकिल टिकी थी, उसमें एक झोला और टिफिन कैरियर भी टंगा था।

आजाद को शालिग्राम को खोने का तो दुःख था ही, साथ ही इस बात की व्याकुलता थी कि पुलिस में मुखबिरी किसने की ?

वैशम्पायन के शब्दों में—"भैया (आजाद) को उनकी शहादत का अत्यन्त दुःख था। सोचने पर आज भी एक चित्र सामने नाच उठता है कि खून में लथपथ एक क्रांतिकारी युवक भूमि पर पड़ा है लेकिन चिल्लाए जाता है—सावधान ! सावधान !!'

दल का विघटन : आज़ाद का क्षोभ

भगतसिंह तथा अन्य साथियों को फांसी के तख्ते पर न झुलाया जाय, यह उस समय समस्त देश की मांग थी। गांधी जी को छोड़कर प्रायः कांग्रेस के बड़े-बड़े सभी नेता इस सम्बन्ध में प्रयत्नशील थे, किन्तु ब्रिटिश साम्राज्यशाही ने इसे सहज ही ठुकरा दिया।

परिस्थितियों के उलझाव में किसी संदेहात्मक धारणावश आजाद ने अपने निकटतम साथी यशपाल को गोली मार देने का निर्णय कर लिया था।

4 सितम्बर, 1930 के दिन दोपहर के समय भैया आज़ाद ने दिल्ली की केन्द्रीय समिति को भंग कर दिया। (अब यशपाल को गोली मारने का निर्णय बदल दिया गया था।)

आज़ाद किसी ठोस निर्णय पर नहीं पहुंच पा रहे थे। दल में आये दिन की उलझन उन्हें कुछ क्षुब्ध कर रही थी।

आजाद उस समय स्वयं बड़ी कठिन, बल्कि दयनीय स्थिति में थे। वे किसी को भी छोड़ देने को तैयार नहीं थे।···उन्होंने सब झगड़ों को समाप्त करने के लिए दल को ही तोड़ दिया कि दल नये सिरे से, नए आधार पर बन सके। दल तोड़कर भिन्न-भिन्न प्रांतों को शस्त्र बांटते

समय उन्होंने एक बराबर का पूरा हिस्सा मुझे भी दिया, हालांकि उस समय मैं किसी प्रांत का प्रतिनिधि नहीं था। किसी ने इस पर आपत्ति नहीं की! आजाद ने सभी को अपने-अपने यहां स्वतन्त्र रूप में काम करने को कह दिया, साथ ही यह भी आश्वासन दिया कि किसी को उनकी सहायता की आवश्यकता होगी तो जो हो सकेगा वे करेंगे। मुझसे आज़ाद ने कहा कि सब लोगों को अपनी-अपनी जगह काम करने दो। हम दोनों अलग से रहकर कुछ करें। --यशपाल

इसके बाद कैलाशपति की गिरफ्तारी से दल को गहरा आघात लगा। वह दिल्ली में अपने घर पर ही पकड़ा गया, यद्यपि गिरफ्तारी के समय उसके पास रिवाल्वर था, तो भी उसने पुलिस पर आक्रमण नहीं किया और न अपने बचाव का ही प्रयत्न किया।

आज़ाद को उसका इस तरह सीधे-सादे गिरफ्तार हो जाना बहुत खला।

वे आह भर उठे, 'लगता है पार्टी की इमारत अब ढह जायेगी।'

और इसके बाद ही दूसरा आघात लगा दिल्ली में धन्वन्तरी की भी गिरफ्तारी हो गई, फिर कैलाशपति के मुखबिर बन जाने का समाचार मिला।

एक के बाद दूसरी अप्रिय घटना का क्रम आज़ाद के क्रोध और क्षोभ का कारण बन गया।

वीरभद्र तिवारी के प्रति भी आज़ाद का संदेह पनप रहा था। एक तो तिवारी का किसी खुफिया से मैत्री सम्बन्ध था, दूसरे किसी भी 'ऐक्शन' के समय वह किसी न किसी बहाने साथियों से कतरा जाता! आज़ाद का संदेह स्वाभाविक ही था।

आज़ाद ने निश्चय कर लिया कि वीरभद्र तिवारी को गोली मार देनी होगी। यह काम आजाद ने यशपाल को सौंपा।

उन्होंने यह प्रबन्ध कर लिया था कि वीरभद्र किसी कार्यवश रात में 'मेमोरियल वेल' के समीप घाट पर जायेंगे, उस समय उन्हें गोली मार दी जायेगी। स्वयं आजाद भी इसमें शरीक हुए।

एक रात एकाएक आजाद आए। यशपाल को सोते से जगाया, दोनों साइकिल पर सवार होकर वीरभद्र की तलाश में चल पड़े।

मगर वीरभद्र छलावा दे गये।

आज़ाद ने झल्लाते हुए कहा, 'हर बार ससुरा कोई-न-कोई झगड़ा खड़ा हो जाता है।'

उन दिनों कानपुर के चुन्नीगज मुहल्ले के एक मकान में फरारी जीवन व्यतीत हो रहा था। यशपाल और प्रकाशवती साथ ही रह रहे थे। आज़ाद प्रकाशवती को तकिये पर पिस्तौल का निशाना सिखाते, प्रकाशवती उन्हें मोटे भैया के नाम से सम्बोधित करती।

आजाद की उपस्थिति का ध्यान न रहने के कारण प्रकाशवती के मुख से एक दिन निकल गया। 'मोटे भैया कभी ये कहते हैं, कभी वो कहते हैं!'

आज़ाद गुस्से में बोले, 'अच्छा री टुइयां हमें मोटा कहती है! सब तेरी तरह हो जायें!'

और उनकी पीठ पर स्नेह से दो-चार घूसे जड़ दिए।

प्रकाशवती बहुत दुबली-पतली थीं। आजाद ने उन्हें नियमित रूप से कसरत करने का हुक्म दिया।

उसके बाद तो वे आये दिन ही पूछा करते, 'टुइयां कसरत करती हो या नहीं?'

आज़ाद को अंग्रेज सरकार से समझौते का विचार भी असह्य था। उनका कहना था कि अंग्रेज इस देश में जब तक शासक के रूप में रहें, हमारी उनसे गोली चलती ही रहनी चाहिए, समझौते का कोई अर्थ नहीं है! अंग्रेजों से हमारा एक ही समझौता हो सकता है कि वे अपना बोरिया-बिस्तरा संभालकर यहां से चल दें।

एक दिन यशपाल ने मजाक में कहा, 'भैया, घबराते क्यों हो? कांग्रेस और ब्रिटिश सरकार के बीच समझौता हो जाने पर, फरार होने की जरूरत नहीं पड़ेगी। तुम्हारा नाम खूब प्रसिद्ध हो चुका है। कांग्रेसी इतना तो सोचेंगे कि तुम थानेदार की वर्दी-पेटी में खूब जंचोगे। तुम्हें

थानेदारी तो मिल ही जायेगी !'

आज़ाद इस पर चिढ़ गये कि उन्हें केवल थानेदारी के लायक समझा गया।

क्रोध प्रकट करते हुए बोले, 'चल साले, तू बड़ा अफलातून है ! तू क्या बन जायेगा ?'

यशपाल ने और भी आनन्द लेते हुए कहा—'तुम थानेदार बनोगे तो हम लोगों की सिफारिश नहीं करोगे ? मैं कम-से-कम हैड कांस्टेबल बनूंगा !'

इस प्रकार के हास-परिहास में फरारी जिन्दगी के दिन जैसे-तैसे कट रहे थे, मगर आज़ाद इस निष्क्रिय वातावरण से संतुष्ट न थे। भविष्य के लिए उनके दिल-दिमाग में जाने कैसी उथल-पुथल थी ?

इलाहाबाद : अन्तिम वर्ष

क्रांतिकारी दल के अनेक सदस्य गिरफ्तार है अथवा युद्ध करते समय शहीद हो चुके है। ये गिरफ्तारियां और मुठभेड़ अधिकांशतः पंजाब, बंगाल और उत्तर प्रदेश में हुई हैं। बचे हुए क्रांतिकारियों के पीछे पुलिस हाथ धोकर पड़ी हुई है।

इन दिनों बचे हुए क्रांतिकारियो ने प्रयाग को अपना केन्द्र बना रखा है।

हिन्दुस्तानी समाजवादी प्रजातन्त्र सेना के प्रधान सेनापति चन्द्र-शेखर आज़ाद इन दिनों यही रहकर दल का संचालन कर रहे हैं।

ब्रिटिश सरकार को इसका आभास है।

आज़ाद को जिन्दा या मुर्दा पकड़ने के लिए लम्बे पुरस्कार की घोषणा है। आज़ाद को पहचानने वाले सी० आई० डी० और मुखबिर भी कहीं निकट ही पड़ाव डाले हैं।

दल गोलमेज कांफ्रेंस के प्रति आशान्वित हो रहा था। समझौते के

लक्षण दीख पड़ रहे थे।

आज़ाद तीर्थराज प्रयाग (इलाहाबाद) में कटरे मुहल्ले के एक मकान में गिने-चुने साथियों के साथ मानसिक उथल-पुथल के दिन गुजार रहे हैं।

और इलाहाबाद कटरे मुहल्ले की एक गली का यह जर्जर मकान 'इलाहाबादी बुढ़िया' (लक्ष्मी दीदी) का है।

जो बड़े गर्व से कहती फिरती है कि कभी भैया आज़ाद और उनके दल के लोग उसके इस मकान में रहे हैं।

आज जो वह इस मकान को आज़ाद के भव्य स्मारक का रूप देने के लिए लोगों से चन्दे की बात करती है तो लोग उसे पागल कह कर उसका मजाक उड़ाते हैं, मगर यह सत्य है कि आज़ाद का अन्तिम पड़ाव इसी घर में था।

लक्ष्मी दीदी का पति एक कर्मठ क्रांतिकारी था। आज़ाद का सहयोगी, जो किसी 'ऐक्शन' में शहीद हो चुका था और अपनी पत्नी को दल की सेवा करते रहने का आदेश दे गया था।

जब आज़ाद ने प्रयाग-प्रवास का निर्णय किया तो लक्ष्मी दीदी ने अपना घर सगर्व खोल दिया।

बची-खुची सम्पत्ति दल को सौंप दी।

क्रान्तिकारियों का खाना बना देना, भिखारिन के भेष में पुलिस, सी० आई० डी० के भेद ज्ञात कर आज़ाद को बताना और उन्हें सुरक्षित रखना आदि उसका काम हो गया।

आज़ाद को भविष्य के प्रति चिन्ता और जिज्ञासा है।

'गोलमेज' द्वारा समझौता हो जाने की सम्भावना की मानसिक उथल-पुथल के कारण हम लोग इलाहाबाद कटरे के मकान में एक तरह से शिथिलता के दिन बिता रहे थे या आराम से रह रहे थे।

सन् 1931 की जनवरी ही थी, परन्तु हवा में फागुन का फर्राटा-पन और सुहानापन आ गया था। सड़कों पर सूखे पत्ते झड़-झड़कर उड़ा करते थे। मुझे खूब याद है कि हम लोग कहा भी करते थे कि इस बार

हवा में जाने क्या मस्ती भरी है। मकान की छत खपरैल की थी; जैसी कि इलाहाबाद में साधारण स्थिति के मकानों की होती थी। खपरैल की संधों से हवा आती रहती और छत के ऊपर से नीम की पत्तियां और धूल भी गिरती रहती। हम लोग दरी या कम्बल बिछाए कुछ पढ़ा करते या समझौते की सम्भावनाओं और हानि-लाभों पर बातें करते रहते। एक पतीला था, उसमें खिचड़ी बना लेते। कभी-कभी इस खिचड़ी में मांस भी डाल देते। आज़ाद ब्राह्मणत्व की रक्षा के लिए मांस के टुकड़ों को गाली देकर परे हटा कर शेष आहार कर लेते, आज़ाद मांस न खाना चाहते थे, पर दूसरे साथी खाना चाहते थे। मध्यम मार्ग यही था कि वे मांस के टुकड़े हटाकर शेष खिचड़ी खा लेते। आज़ाद को मांस पसन्द नहीं था, पर छूत का भी डर नही था। आज़ाद ने सुबह दण्ड-सपाटे लगाना और साथियों से पंजा लड़ाना भी शुरू कर दिया।

उन दिनों सभी ओर से समझौता हो जाने की बातों का असर उन पर भी कैसे न होता? एक रात वे कहने लगे—

'कांग्रेस ने अगर समझौता कर भी लिया तो मैं पेशावर से सरहद पार निकल जाऊंगा। वजीरी और अफरीदी अंग्रेजों से कभी समझौता नही कर सकते। उन्ही लोगों के साथ अंग्रेजों से लड़ूंगा।···सोहन, (यशपाल का पार्टी नाम) ऐसे आदमी को अकेलापन खलता है। तुमने और टुइयां (प्रकाशवती) ने अच्छा किया कि साथी बन गए, जीवन का हर हालत का साथ तो स्त्री-पुरुष में ही जम सकता है। मैं अब अगर सोचूं तो भी ऐसी स्त्री है कहां? दीदी (सुशीला) को ही देखो, क्या मरगिल्ला-सा जिस्म है, दिमाग को ही लेकर कोई क्या करेगा? अलबत्ता भाभी (श्रीमती दुर्गादेवी) है कुछ, पर वह भी नही! मैं तो एक ऐसी स्त्री से शादी करना चाहता हूं कि कांग्रेस वाले अंग्रेजों से समझौता कर भी लें तो हम सरहद पार चले जायें, वह रायफल भर-भरकर देती जाए और मैं दनादन चलाता जाऊं। बस इसी तरह समाप्त हो जाए!

—यशपाल

आज़ाद को कलख था !

आज़ाद पण्डित जवाहरलाल नेहरू से मिलने के लिए आनन्द भवन गए। इसके पूर्व वे पण्डित मोतीलाल नेहरू से भी मिल चुके थे, परन्तु पण्डित मोतीलाल नेहरू स्वर्गवासी हो चुके थे।

पण्डित जवाहरलाल नेहरू से मिलने का मुख्य उद्देश्य गोलमेज कांफ्रेंस की सम्भावनाओं पर विचार-विनिमय करना था। साथ ही दल के भविष्य के सम्बन्ध में भी व्यग्रता और चिन्ता थी।

पण्डित नेहरू ने 'मेरी कहानी' (आत्म-कथा) में आज़ाद से मुलाकात का जिक्र किया है—

'आज़ाद मुझसे मिलने के लिए इसलिए तैयार हुआ था कि हमारे जेल से छूट जाने से आमतौर पर आशाएं बंधने लगी थीं कि सरकार और कांग्रेस में कुछ-न-कुछ समझौता होने वाला है। वह जानना चाहता था कि अगर कोई समझौता हो तो उसके दल के लोगों को भी कोई शांति मिलेगी या नहीं? क्या उनके साथ तब भी विद्रोहियों का-सा बर्ताव किया जायेगा? जगह-जगह उनका पीछा उसी प्रकार किया जाएगा? उनके सिरों के लिए इनाम घोषित होते ही रहेंगे? और फांसी का तख्ता हमेशा लटकता ही रहेगा? या उनके लिए शांति के साथ काम-धन्धे में लग जाने की सम्भावना होगी? उसने कहा कि खुद मेरा तथा मेरे दूसरे साथियों का यह विश्वास हो चुका है कि आतंकवादी तरीके बिलकुल बेकार है, उससे कोई लाभ नही है। हां, वह यह मानने के लिए तैयार नही था कि शांतिमय साधनों से ही हिन्दुस्तान को आज़ादी मिल जाएगी। उसने कहा, 'आगे कभी सशस्त्र लड़ाई का मौका आ सकता है, मगर यह आतंकवाद न होगा।'

'मुझे आज़ाद से यह सुनकर खुशी हुई थी और बाद में उसका सबूत भी मिल गया कि आतंकवाद पर से लोगों का विश्वास हट गया है। अवश्य ही इसके यह माने नही हैं कि पुराने आतंकवादी और उनके नये साथी अहिंसा के हामी बन गए हैं या ब्रिटिश सरकार के भक्त बन

जाते है। हां, अब वे आतंकवादी भाषा में नहीं सोचते। मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि उनमें से बहुतों की मनोवृत्ति निश्चित रूप से फासिस्ट बन गई थी !'

आज़ाद ने नेहरू जी से मुलाकात के बाद जब इस घटना की बात हम लोगों को कटरे के मकान मे सुनाई तो उनके भी होंठ खिन्नता मे फड़फड़ा रहे थे और उन्होंने कहा था—'हमें फासिस्ट कहता है···!'

आज़ाद का अभिप्राय गाली देने से नही था। बचपन की संगति के प्रभाव से कुछ शब्द उनकी जवान पर तकियाकलाम के रूप मे चढ़ गए थे, गम्भीरता या क्रोध में गाली कभी नही देते थे, यों बातचीत में असावधानी से गालियां मुंह से निकल ही जाती थी। अस्तु मेरा विचार है कि आज़ाद ने यह नही कहा होगा कि मेरा तथा मेरे साथियों को विश्वास हो चुका है कि आतंकवादी तरीके बिल्कुल बेकार है बल्कि यह कहा होगा, 'हम आतंकवादी नहीं हैं, हम सशस्त्र क्रान्ति की चेष्टा कर रहे हैं।' यह बात पण्डितजी की अगली पंक्तियों से स्पष्ट हो जाती है, 'वह यह मानने के लिए तैयार नही था कि शान्तिमय साधनों से ही हिन्दुस्तान को आजादी मिल जाएगी, उसने कहा, आगे कभी सशस्त्र लड़ाई का मौका आ सकता है !'

पण्डित जी ने आज़ाद की बातों में फासिज्म की गंध कैसे पाई ? यह समझा नहीं जा सकता, फासिज्म तो शासन के दमन पर आश्रित पद्धति है। हम लोग तो शासन करने का ख्वाब नही देख रहे थे, बल्कि ब्रिटिश शासन के दमन या फासिज्म का विरोध कर रहे थे।

—श्री यशपाल

आज़ाद को इस बात का बहुत कलख था कि नेहरूजी ने उन्हें फासिस्ट कहा।

उन्होंने कहा—'सोहन ! एक दिन तुम जाकर पण्डित नेहरू से मिलो !'

फरवरी के दूसरे-तीसरे सप्ताह में यशपाल (सोहन) नेहरूजी से आनन्द भवन में मिलने गए।

यशपाल ने नेहरूजी को स्पष्ट कहा, 'हम लोग आतंकवादी नहीं हैं, हम व्यापक सशस्त्र क्रान्ति का प्रयत्न कर रहे हैं। हमारा प्रयत्न भी देश की मुक्ति के लिए संघर्ष का ही भाग है। हम सरकार के दमन से लोहा लेकर उसे बताना चाहते है कि तुम्हारी शस्त्र-शक्ति से हम भयभीत नहीं हैं। हमारा दृष्टिकोण समाजवादी है, आतंकवादी नही !'

इस प्रसंग में यशपाल ने अनुभव प्राप्त करने के लिए रूस जाने की इच्छा का जिक्र किया और उसने आर्थिक सहायता का अनुरोध भी किया।

नेहरूजी ने बताया कि मोतीलाल जी की मृत्यु के बाद से वे अपनी आर्थिक स्थिति के बारे में स्वयं चिन्तित हैं···(कुछ सोचकर) 'आतंक-वादी काम के लिए मैं तो कुछ भी सहायता नहीं करूंगा। हां रूस जाने वाली बात के लिए मैं सोचूंगा !'

यशपाल ने लौटकर आज़ाद को यह घटना बताई तो उन्हें कुछ सन्तोष मिला।

मेरी हड्डियां तो यहीं गलेंगी

जब दल विघटन और मुखबिरी की स्थिति से गुजर रहा था तभी कुछ साथियों ने आज़ाद के समक्ष रूस चले जाने का प्रस्ताव रखा था।

इस पर आजाद ने उत्तर दिया, 'मैं रूस-फूस नहीं जाता। मेरा देश आज़ादी का युद्ध लड़ रहा है, ऐसे समय में मैं देश के बाहर नहीं जाऊंगा, यह तो रण में पीठ दिखाने के समान होगा। मेरी देश में ही आवश्यकता है और मैं जीवन की अन्तिम सांस तक शत्रु से लड़ता रहूंगा !'

'लाहौर षड्यन्त्र से छूट जाने के बाद आज़ाद के कहने पर मैं पुनः घर छोड़ने को राजी हो गया और फरार के रूप में इलाहाबाद में उनके साथ ही घर में रहता था। उनकी प्रतिभा का जैसा असाधारण विस्तार दिन-दूना रात चौगुना हो रहा था, उसे देखकर मैं आश्चर्य-

चकित था। मेरा विश्वास है कि जिसने उनके मानसिक विकास को एक महीने पहले देखा हो, एक महीने बाद की उनकी विकसित मानसिक प्रतिभा देखकर वह पहचान नहीं सकता था कि यह वहीं पहले वाला व्यक्ति है।'

मैंने देखा जैसे-जैसे उनका उत्तरदायित्व बढ़ता जाता है, उससे भी तीव्रता से उनकी योग्यता का क्षितिज विस्तृत होता जाता है।

इसलिए उन दिनों मेरी सबसे प्रबल इच्छा यह थी कि आज़ाद किसी प्रकार जीवित बने रहें। क्योंकि केवल वही हैं जो समझ पाए हैं कि हमारी क्रांति का स्वरूप क्या है और वह कैसे लाई जा सकेगी? फलत: मैं उनसे दिन-रात जब भी मौका मिलता तर्क करता। भैया तुम रूस जाओ! तुम्हारी यह योजना तुम्हारी ही देख-रेख में सफल बन सकेगी।

और मेरे तर्कों का उनकी ओर से उत्तर होता था—'तुम्हीं बताओ पाण्डेय! यहां और कौन है जो हजारों युवकों को भेजने का संगठन और प्रबन्ध कर सकेगा? और मैं चला जाऊंगा तो हमारे तरुणों के साहस का पतन हो जाएगा। क्या तुम नहीं समझते? भाई मेरी हड्डियां तो यहीं गलेंगी।' अन्ततः उन्होंने तय किया कि समस्त फरार क्रान्तिकारी ही नहीं अपितु हजारों की संख्या में तरुणों को शिक्षा प्रचार और संगठन-कार्य में निपुणता प्राप्त करने के लिए रूस भेजा जाए।

मुझे, यशपाल और वैशम्पायन को इस कार्यक्रम को कार्यान्वित करवाने के लिए ही वे 1 मार्च 1931 को रूस भेजने वाले थे। किन्तु—?

—सुरेन्द्रनाथ पाण्डेय

एक रात पहले !

नेहरूजी ने रूस जाने के सहायतार्थ पन्द्रह सौ रुपये की सहायता भिजवा दी ।

26 फरवरी की रात, यशपाल वे रुपये आजाद को देने लगते हैं ।

'नहो तुम्हीं अपने पास रखो !' आज़ाद रुपये लेने से इन्कार करते हैं ।

परन्तु तो भी यशपाल पांच-सौ रुपये उनकी जेब में डाल देते है ।

रात-भर रूस जाने के विषय में बातें होती रहती है ।

और 27 फरवरी, 1931 शुक्रवार का दिन है । सुबह 9-10 के बीच का समय । गुलाबी धूप धीरे-धीरे तेज हो रही है, हवा में बसन्त की मस्ती है ।

यशपाल को रूस जाने की तैयारी के लिए कुछ सौदा-सुलफ खरीदना है, सुरेन्द्र पाण्डेय के साथ चौक जाने का कार्यक्रम बनता है ।

आज़ाद कहते हैं—'मुझे भी एल्फ्रेड पार्क में एक आदमी से मिलना है, चलो साथ ही चलते है, तुम लोग आगे निकल जाना ।'

तीनों साइकिलों पर चल पडते हैं ।

एल्फ्रेड पार्क में सुखदेव राज सामने से साइकिल पर आते दीख पड़ते हैं ।

'अच्छा तुम लोग जाओ !' कहकर आज़ाद पार्क की ओर मुड़ जाते हैं ।

वह मुखबिर कौन था ?

वह गत दस वर्षों से साम्राज्यवाद के विरुद्ध अथक युद्ध अजीब-अजीब परिस्थितियों में, कहना चाहिए बिलकुल प्रतिकूल परिस्थितियों में करते आए । गत आठ सालों से उन्होने क्रांति का मार्ग अपना रखा था । किसी विपत्ति के सामने भी यह रणबांकुरा पीछे नहीं हटा, यह तो

उसके स्वभाव के विरुद्ध था, न तो उसने कभी जी चुराया। विपत्ति उसके लिए ऐसी थी जैसे हंस के लिए पानी। गन् साढ़े छह सालों यानी 26 सितम्बर, 1925 से फरार थे। 17 सितम्बर 1928 यानी सैण्डर्स हत्याकाण्ड के दिन से फांसी का फंदा उनके लिए तैयार था, फिर तो न मालूम कितनी फांसियां और काले पानी के हकदार वह हो गए।

—मन्मथनाथ गुप्त

परन्तु 'घर का भेदी लंका ढाए' की स्थिति का मुकाबला कब तक और कहां तक किया जा सकता है? कल जो कन्धे-से-कन्धा मिलाकर साथ-साथ चलते रहे, आज़ाद के पसीने के लिए अपना खून बहाने का दावा करते रहे, वे ही बहुत से स्वार्थी, कायर और लोभी साथी मुखबिर बन गए।

कोई लम्बी सजा, दण्ड, पिटाई और काले पानी के भय से कोई दल और आज़ाद का भेद देकर ब्रिटिश सरकार की पदवी, ओहदे और इनाम-इकरार पाने के लिए और कोई आचरणहीनता के कारण दल से निकाल दिए जाने पर।

इन मुखबिरों से जहां तक बन पड़ा, दल का विघटन किया, सेना-पति आज़ाद के हृदय को अपने विश्वासघात और मुखबिरी से आघात पहुंचाकर विदीर्ण किया।

तभी तो निरन्तर ऐसे विश्वासघात से कुपित होकर आज़ाद ने कहा—'चूंकि हम मुखबिरों और विश्वासघातियों को कोई सजा नहीं देते, इसलिए यह स्थिति पैदा होती है।'

भविष्य में उन्होंने संदिग्ध और अविश्वसनीय व्यक्ति को फौरन गोली मार देने का निश्चय कर लिया।

परन्तु वह 'मुखबिर' उन्हें दाव दे गया। वह मुखबिर?

27 फरवरी की ही बात है। गोरे रंग, मझले कद और घुंघराले बालों वाला एक नवयुवक सुबह-ही-सुबह पुलिस इंस्पेक्टर विश्वेश्वर सिंह के यहां पहुंचा।

विश्वेश्वर सिंह ने पूर्व परिचित और 'काम का आदमी' का तपाक

से स्वागत किया। उसके लिए बढ़िया चाय-नाश्ता लाने का आदेश दिया फिर बड़ी उत्सुकता से पूछा—'सुबह-सुबह कैसे? कोई खास बात···?'

'हां···!' वह उनके कान के पास मुंह ले जाकर फुसफुसाने लगा—'बैठने का वक्त नहीं, फौरन चलिए। वे लोग कटरे की तरफ से चौक की तरफ जाने वाले हैं।'

'सच!' विश्वेश्वर सिंह ने अविश्वास के भाव से कहा—'मुझे तुम्हारी बातों का विश्वास नहीं रह गया, इस तरह की उड़ती-पड़ती सूचना देकर जाने कितनी बार झूठ-मूठ के लिए परेशान कर चुके हो।'

'मैं बिलकुल ठीक कह रहा हूं इंस्पेक्टर साहब!' नवयुवक ने विश्वास दिलाते हुए कहा—'यह खबर बिलकुल सही है, आजाद भी साथ है, अगर आप यह मौका चूक गए तो···!'

'ठीक है, एक बार और सही!' एकाएक गम्भीर होकर उठते हुए विश्वेश्वरसिंह ने चेतावनी-भरे स्वर में कहा, 'जाता तो हूं मगर याद रखो साले, अगर बात झूठ निकली तो मारते-मारते तुम्हारा कचूमर निकाल दूंगा।'

उन्होंने उस नवयुवक को खींचकर एक कोठरी में धकेल दिया और बाहर से ताला लगा दिया।

'अरे, मेरी भलमनसाहत का क्या इनाम दे रहे हैं मुझे?' नवयुवक यह अप्रत्याशित दण्ड पाकर चीख उठा।

'यह भलमनसाहत है साले! पड़ा रह, जाता हूं। अगर काम न बना तो लौटकर तेरी मरम्मत करूंगा।'

वह कोठरी में चिल्लाता रहा और इंस्पेक्टर विश्वेश्वरसिंह सुनी-अनसुनी कर फौरन घर से बाहर निकल गए।

वे हवा की गति से एस० पी० नॉट बावर के बंगले की दूरी नाप रहे थे।

शानदार मोर्चा

पार्क के भीतर आकर आज़ाद सुखदेव के साथ एक स्थान पर आकर बातें करने लगते हैं।

तभी आज़ाद की दृष्टि पार्क के बाहर सड़क पर जाती है और वे जैसे चौंककर कहते है—'जान पड़ता है वीरभद्र तिवारी जा रहा है।'

परन्तु आज़ाद को विशेष शंका नही हुई। वे बातें करने में व्यस्त रहे।

उधर ,पार्क के चारों ओर घेरा डाल दिया गया है। अचानक ही एक ओर से सनसनाती हुई गोली आती है और आज़ाद की जांघ में धंस जाती है और इसके जवाब में आज़ाद की गोली पुलिस अफसर की कार का टायर पंचर कर देती है।

सावधान···!

वह एकदम पिस्तौल निकालने के लिए अपनी जेब में हाथ डालते हैं।

मगर धड़धड़ाती हुई दूसरी गोली आकर फेफड़े में धंस जाती है।

आज़ाद लहूलुहान हैं। रक्त की रेखाएं उस अजेय-पौरुष को सरा-बोर कर रही है।

'तुम बचो मैं लड़ूंगा !' साथी को सतर्क कर आज़ाद ने इमली के पेड़ का 'मोशन' लिया।

और बायां हाथ विद्युतीय गति से सक्रिय हुआ— 'धांय···!'

पिस्तौल पकड़े हुए नॉट बाबर की कलाई टूट गई। एक ही गोली का करिश्मा···वह भागा।

'देखो···देखो नॉट बाबर भागा जा रहा है। मोटर पर बैठकर भाग न जाए !'

आज़ाद की पिस्तौल फिर गरज उठी। मोटर का इंजन चूर हो गया।

नॉट बाबर प्राण बचाकर भागा जा रहा है। वह पेड़ के पीछे

छिप गया है।

युवक (आज़ाद) भी खिसक कर बढ़ा, उसके सामने वाले पेड़ पर उसने आश्रय लिया। दाएं, बाएं, सामने सभी ओर से गोलियां आ रही हैं, लेकिन आज़ाद का लक्ष्य तो नॉट बाबर है।

वह कह रहा है—'ओ ब्रिटिश साम्राज्य के प्रतिनिधि सामने आ जा। भारतीय क्रान्तिकारी के सामने गीदड़ की तरह क्यों दुबका खड़ा है, अरे हिन्दुस्तानी सिपाही भाइयो! तुम क्यों मेरे ऊपर अंधाधुंध गोलियां बरसा रहे हो? मैं तो तुम्हारी आज़ादी के लिए युद्ध कर रहा हूं। तुम समझो तो सही, तुम निर्बुद्ध चलाये जाओ गोली! मैं तुन्हें नहीं मारूंगा।'

ओह, वह दाहिनी ओर कौन गोली चला रहा है? यह किसका सिर झाड़ी के ऊपर निकला? यह तो विश्वेश्वरसिंह एस० पी० है, इसी की गोली ने बांह और शरीर छेद डाला है।

मगर अब तो यह गाली देने लगा।

अच्छा तू भी ले! पिस्तौल फिर गरज उठी।

और विश्वेश्वर सिंह का गाली देने वाला जबड़ा चूर हो गया। वह भूमि पर लुढ़क गया।

और यह करिश्मा देख शत्रु भी वाह-वाह कह उठे।

'वण्डरफुल···वण्डरफुल शाट!' सी० आई० डी० के आई० जी० का स्वर है।

आज़ाद की पिस्तौल में सिर्फ एक गोली शेष है।

उनकी वीरता और 'प्रजेन्स ऑफ माइण्ड' तो देखिए। जांघ की हड्डी टूटी है, दाहिनी बांह को विदीर्ण कर गोली फेफड़े में धंस गई है फिर भी लगभग आधा घण्टे से वीरता का अद्भुत प्रदर्शन कर रहा है, उसे यह भी याद है कि कितनी गोलियां खर्च हो चुकी हैं!

क्योंकि उसने प्रण कर रखा है, बन्धन में नहीं पड़ूंगा—'आज़ाद हैं, हमेशा आज़ाद ही रहेंगे।'

बाया हाथ उठा, पिस्तौल कर्णपुट के पास आई, एक धांय-सी

आवाज़ हुई। गोली उनके मस्तिष्क में समा गई।

—सुरेन्द्र पाण्डेय

और क्रांति के मसीहा ने अपना प्रण निभाया। बंधनमुक्त शरीर से, बन्धनमुक्त आत्मा उड़ गई। क्रांति का देवता सो गया। क्रांतिकारी दल का दीपक बुझ गया।

विद्यार्थियों, राहगीरों, तमाशबीनों और उत्सुक दर्शकों की भीड़ बढ़ने लगी।

कानाफूंसी, शोरगुल—'कौन है? अरे वह बहादुर नौजवान कौन है?'

किसी तरफ से भर्रायी भीगी आवाज़ आई।

'अब भी नहीं पहचान पाए? क्रांति-शिरोमणी आज़ाद!'

'आज़ाद···महान् क्रांतिकारी आज़ाद!'

और आज़ाद शहीद हो गए।

भीड़ पर भीड़···कोलाहल···शोर-शराबा और आह, सिसकन तथा व्याकुलता।

पुलिस भीड़ को तितर-बितर करने के लिए हर संभव कोशिश करती है।

आह! उनका शरीर शान्त-निस्पन्दित पड़ा है। वह शरीर जो अभी कुछ क्षण पहले पल-पल सतर्क रहा है। जिसे निहार कर बड़े-बड़े पुलिस अफसरों के छक्के छूट गए हैं। दुश्मनों के माथे पर पसीना आ गया है।

मुखड़े पर भय, विषाद का कोई चिह्न नहीं है, कोई थकान नहीं। वैसी ही चमक, निर्भीकता, स्वाभिमान और दृढ़ता।

पुलिस बड़ी सावधानी के साथ उनके शरीर की ओर बढ़ रही है। अब भी डर है कि कहीं वह 'सिंह' मृत्यु का अभिनय तो नही कर रहा है।

उसके समीप असावधानी से जाना खतरे से खाली नही।

आस-पास पड़े जामुन के पत्ते उस महावीर के लहू के छीटों से तरबतर हैं, जहां-तहां पृथ्वी पर रक्त की बूंदें चमक रही हैं।

वह शांत और निस्पंदित है तो क्या हुआ ! ऐसे उसके करीब जाना ठीक नहीं।

'कायर गोरे सिपाही' उसकी मृत्यु हो जाने का अन्दाज़ लगाने के लिए एक गोली पैर में मारते हैं।

मगर अब भी उनके उठ पड़ने की आशंका बनी है, निकट पहुंचकर भी पुलिस अफसर उनको बाल पकड़कर झिझोड़ते हैं।

भीड़ की नदी सीमा तोड़ रही है। जनता अपने क्रान्ति-देवता का अन्तिम (और प्रथम) दर्शन करने के लिए व्यग्र-व्याकुल है।

मगर पुलिस अफसर समझते हैं कि अब विद्रोह होने का भय है। जन-भीड़ को जबरन काबू में लाने की कोशिश हो रही है।

एक पुलिस ट्रक आ गया है। उस पर उस परमवीर को घसीट कर लादने की कोशिश की जा रही है।

घसीट कर ? हां ! गुलाम जनता का यह साहस कहां कि अपने क्रान्ति-देवता को अपने कन्धों पर सम्मान दे सके। फूलमालाओं से श्रद्धांजलि अर्पित कर सके।

और ब्रिटिश सरकार के गीदड़ों और चमचों ने बड़ी बेरहमी के साथ क्रान्ति के मसीहा का शव ट्रक पर लाद लिया है। दर्शन के लिए लोग तड़प रहे हैं, कन्धे-से-कन्धा लडा रहे हैं, मगर नहीं। ट्रक स्टार्ट हो चुका है। भरभरा रहा है···कुहराम मच रहा है···ट्रक भागने लगता है।

और लक्ष्मी दीदी दूर से हाय-हाय करती, चिल्लाती, भागती आती है। भैया आज़ाद शहीद हो गए।

ट्रक विलीन हो गया। हज़ारों आंसू धरती में समा गए।

कौन कहता है आज़ाद मर गया ?

और दूसरे दिन प्रातः 'लीडर' अखबार (जो अब तक बात-बात पर क्रान्तिकारियों की कटु आलोचना करता आ रहा था, आज प्रथम बार प्रशंसात्मक टिप्पणी दी) के मुखपृष्ठ की सुर्खी थी···

'ए रिवोल्यूशनरी गिव्ज बैटिल टू दी पुलिस' अर्थात्···एक क्रान्तिकारी द्वारा पुलिस से युद्ध।

भले ही ब्रिटिश सरकार अपनी इस 'गीदड़ सफलता' पर गद्गद हो उठी हो, भले ही पुलिस अधिकारियों ने इस महान् योद्धा के 'बलिदान' के बदले भारी ओहदे और इनाम-इकराम पाए हों, भले ही 'कांग्रेस समर्थकों' और सशस्त्र क्रान्ति के विरोधियों को उनके आज़ादाना बलिदान से शान्ति-तुष्टि मिली हो, लेकिन आम जनमानस विदीर्ण हो रहा था। देश के लिए प्राणाहुति करने का अरमान रखने वालों के हौसले बुझ रहे थे!

भैया आज़ाद शहीद हो गए।

नहीं···नहीं, विश्वास करने को जी नहीं चाहता।

लाश चोरी से पोस्टमार्टम के लिए रसूलाबाद भेज दी जाती है, जनता अपने हाथों से अपने क्रान्ति देवता का अन्तिम संस्कार करना चाहती है। मगर ब्रिटिश साम्राज्य को यह कहां मंजूर कि उसके सबसे बड़े 'प्रतिद्वन्द्वी-दुश्मन' को जन-सम्मान मिले ?

हड़ताल होती है···भारी जलूस निकाला जाता है। समग्र भारत उस महान् योद्धा की शहादत से आकुल हो उठता है। शायद हर आज़ादी का सपना देखने वाला एक-दूसरे से सवाल करता 'आज़ाद' शहीद हो गए।

और दूसरे दिन से एल्फ्रेड पार्क के उस स्थान पर आकुल-व्याकुल जनता का मेला लगना शुरू हो जाता है।

लोग आंखें फाड़े अचरज से देखते रहते हैं। जिस पेड़ के पीछे नॉट बाबर उस महान् योद्धा पर गोलियां बरसा रहा था, उस पर

आज़ादी की जवाबी गोलियों के निशान अंकित हैं।

धन्य है वह इमली का पेड़ जिसके नीचे वह अन्तिम नींद सो गए। पास के जामुन के पत्तों को, जिन पर आज़ाद के खून की गवाही थी, श्रद्धालु जनता उठा ले गई।

जनता उस पेड़ पर फूलमाला चढ़ाती है।

आज़ाद जहां अन्तिम नींद में डूबे थे, उस स्थान की मिट्टी खरोंच ले जाती है। श्रद्धांजलियों और दर्शनार्थियों के मेले का अन्त नहीं होता।

रोज़-रोज़ भीड़···श्रद्धांजलियां···क्रान्ति-योद्धा का यशोगान और अर्घ्य !

ब्रिटिश सरकार को यह भी सहन नहीं। वह अपने कट्टर विरोधी की यह पूजा कैसे देख सकती है? वह पेड़ उखाड़ दिया जाता है। इसके जर्रे-जर्रे से आज़ाद की शहादत का निशान मिटा दिया जाता है।

मगर काश वे यह भी सोचते कि वे स्वतन्त्रता का इतिहास न मिटा सकेंगे। उन्होंने शायद यह नहीं सोचा कि शरीर से मरे हुए आज़ाद को वह भारत के जन-मानस से हटा सकेंगे?

और आज़ाद मरा ही कहां जो उसके मिटने मिटाने का प्रश्न उठे?

आज़ाद ज़िन्दा है। आज भी ज़िन्दा है आज़ाद! वह उस हर क्षण तक जिन्दा रहेगा जब तक भारत और भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राम का इतिहास विलय नहीं हो जाता। जब तक तीर्थराज प्रयाग में उनकी ज़िन्दादिली की गवाही देने वाली गंगा-यमुना इस धराधाम पर प्रवाहित है।

आज़ाद आज भी ज़िन्दा है। हर भारतीय नवयुवक के हृदय में, हर नए बच्चे में, हर देशभक्त में, हर इतिहासकार की कलम पर।

न आज़ादी मर सकती है, न आज़ाद।

शोषण, अत्याचार, गुलामी और भ्रष्टाचार के विरुद्ध आज भी आज़ाद की छाया देश के सच्चे सेवकों में प्रविष्ट है।

आज़ाद न कभी मरा है न कभी मरेगा।

शोषणकर्त्ताओ, भ्रष्टाचारियो सावधान···! ऐसा न हो आज़ाद

किसी कोने से निकलकर तुम पर टूट पड़े।

और दो-तीन दिनों तक अपने भैया आज़ाद की शहादत पर विकल रहने के बाद इलाहाबादी बुढ़िया (लक्ष्मी दीदी) इस इमली के पेड़ के नीचे से थोड़ी-सी मिट्टी खुरच लाई।

तब से नित्य रात भैया की बलिदान-भूमि पर दीया जलाने जाती है।

लोग उसकी बातों का विश्वास नहीं करते, मगर वह बड़े गर्व से कहती फिरती है, 'क्या कहने है भैया आज़ाद के···? उनका ऐसा स्मारक बनाऊंगी, ऐसा कि···लाओ तुम भी कुछ चन्दा देते हो ?'

और वह हाथ का रेजगारी-भरा डिब्बा बजा देती है।

शेखर जरूर आयेगा !

'शेखर अंग्रेजों से अकेला कैसे लड़ सकता है ? असम्भव है, बिलकुल असम्भव !' दीन दुखी मां की ममता छलक पड़ी, 'मुझे बहकाओ मत। शेखर आएगा, एक दिन जरूर आयेगा शेखर।'

सुखदेव (आज़ाद के बड़े भाई) बहुत पहले ही काल के गाल में समा गए। उस परिवार का अन्तिम दीपक बचा था चन्द्रशेखर, जिससे मां-बाप को आशा थी कि कभी प्रज्वलित होगा तो सारा दुख-दरिद्र मिट जाएगा। पिता ने अभिलाषा की थी कि शेखर पढ़-लिखकर अच्छी-भली नौकरी में लगेगा।

किन्तु पहले तो शेखर के घर से भागने की ठेस लगी फिर उसके राजनैतिक कार्यों में शामिल होने से और जब क्रान्तिकारी के रूप मे उसका नाम उभरकर आया तो वह आशा-अभिलाषा गौरव और सन्तोष में बदल गई।

पुत्र कितना ही विद्वान्, यशवान् और सम्मानित क्यों न हो जाए मां-बाप के लिए आजीवन अबोध, दुलरैता और अपना होता है।

आज़ाद को आज़ादी की लड़ाई में कूदने के बाद कभी इतना मौका ही कहां मिला था कि मां-बाप के पास दो-चार दिन रह सकते, उनकी आकुल-व्याकुल ममता को तुष्टि दे सकते। सारे देश की आंखों का तारा आजाद, केवल अपने मां-बाप की ही चिन्ता कैसे कर सकता था!

और बेटे के आने की प्रतीक्षा में वह आंखें बिछाए रहती है। देवी-देवताओं की मान-मनौती करती है। उसने अपने पैर की मध्यमा और अनामिका उंगलियां डोरे से बांध रखी हैं।

कोई पूछता है—'यह क्या अम्मा?'

वह बड़ी निरीहता से उत्तर देती है—'मैंने मनौती कर रखी है, जब मेरा शेखर घर लौटकर आएगा तभी उंगलियां खोलूंगी।'

प्रतीक्षा दीर्घ और लम्बी होती चली जाती है। कभी-कभी शेखर के न आने की व्यथा बांध तोड़कर फूट निकलती है। वह रोने लगती है। लगातार रोती रहती है मां!

उसके हृदय का टुकड़ा, कुल का दीपक और आंखों की पुतली, जाने कब तक रुलाता रहेगा उसे! जाने कब आएगा वह?

पता नहीं बिना खाए-पिए, सूखा-भूखा कहां भटक रहा हो? एक बार आ जाता। आंखें भर देख लेती, हृदय से दुलरा लेती, उलाहना दे लेती तो ममता की ज्वाला ठण्डी हो जाती।

कलेजे पर पत्थर रखे भी तो कैसे? मां का हृदय जो है।

लोग उसे दिलासा देते हैं, शेखर की तारीफ करते हुए कहते हैं, 'तुम्हारा शेखर कितना महान् है! देश की आज़ादी के लिए लड़ रहा है। उसने अंग्रेजी सरकार के छक्के छुड़ा दिए। लोग उसके नाम की जय-जयकार करते हैं।'

मगर उसे विश्वास नहीं होता।

वह अपने आपसे तर्क करती है – 'शेखर भला अंग्रेजी सरकार से कैसे लड सकता है? सरकार के पास तोप, बन्दूक, सिपाही हैं और शेखर अकेला है। वह कैसे मान ले कि उसके बेटे ने इतना तगडा मोर्चा लिया है। जो पिता की तनी हुई भृकुटि देखकर उसकी गोद में दुबक

जाता था, वह मासूम शेखर यह सब कैसे कर सकता ? ?

नहीं, लोग उसे झूठ बहकाते हैं। धीरज और तसल्ली देने के लिए बड़ी-बड़ी बातें करते हैं।

शेखर नहीं आया। प्रतीक्षा की भी सांसें थकने लगीं। मां रोती रहती दिन-रात। क्षण-भर को भी आंखों के आंसू नहीं सूखते। रोते-रोते पथरा गई हैं आंखें! ज्योति क्षीण हो चुकी है। सुझाई भी नहीं देता। शरीर जर्जर होता जा रहा है, तो भी विश्वास का दीपक मन्द-मन्द जल रहा है।

शेखर आएगा, ज़रूर आएगा शेखर!

और जब आज़ाद की बहादुराना शहादत के बाद लोग उसे बताते हैं, 'मां, धन्य हो तुम और धन्य है तुम्हारी कोख! तुम्हारा शेखर अंग्रेजों के दांत खट्टे करते हुए शहीद हो गया।'

तो क्षण-भर को जड़वत् रह जाती है, फिर आंसुओं की लड़ी गिराती हुई अविश्वास के भाव से कहती है, 'यह कैसे हो सकता है? शेखर अंग्रेजों से अकेला कैसे लड़ सकता है? तुम लोग मुझे बहकाते हो। शेखर ज़िन्दा है, वह जरूर आएगा।'

और जब पड़ोसियों से मां जगरानी का रोना-कल्पना नहीं देखा जाता तो फिलहाल उसे ढाढस बंधाने के लिए एक उपाय सोचा जाता है।

आज़ाद ने कभी अपने अभिन्न साथी विश्वनाथ वैशम्पायन से कहा था, 'बच्चन, कभी मौका मिले तो भांवरा जाकर मेरी मां से जरूर मिलना।'

और दिल्ली षड्यन्त्र से छूटने के बाद वैशम्पायन मां के दर्शनार्थ भांवरा आते हैं।

गांव वाले मां के धैर्य के लिए वैशम्पायन के आने पर उससे कहते हैं, 'तुम्हारा शेखर आ गया।'

ज्योति-विहीन, ममता-विह्वल मां वैशम्पायन को हृदय से लगा कर टटोलने लगती है। शायद अपने विश्वास की पुष्टि के लिए कि यह

उसका शेखर है अथवा नहीं।

उस क्षण वैशम्पायन की आत्मा हाहाकार कर उठी। जी चाहा कि ज्योति-विहीन मां की अंधी ममता से खिलवाड़ न कर साफ-साफ कह दे, 'भैया आजाद सचमुच शहीद हो गए मां! तुम्हारे शेखर का शरीर अब इस दुनिया में नहीं है।' किन्तु मां को जबरदस्त आघात लगने के भय से उनके होंठ कांपते रह गए।

किन्तु जब टटोलते-टटोलते मां का हाथ उनके मुख-भाग पर पहुंचा तो अचानक ही बिखर पड़ी, 'तुम मेरे शेखर नहीं हो, तुम्हारे चेहरे पर माता के दाग कहां हैं? तुम्हारी दाहिनी आंख के पास चोट का निशान कहां है?'

वैशम्पायन ने जैसे-तैसे आज़ाद की शहादत का कटु सत्य उगल दिया।

और तब वह क्रान्ति वीर मां हर्ष-विह्वल कण्ठ से फूट पड़ी, 'मेरा शेखर देश के काम आया! मेरी कोख धन्य हो गई।'

'बेटा मेरा शेखर, शरीर से शहीद हुआ न? वह तो नाम से सदा जिन्दा रहेगा।'

और वह पैर में बंधी मनोती का डोरा खोलने लगी।

सन्देहों का गोलमाल!
विश्वासघात किसने किया?

आज़ाद के प्रति-विश्वासघात किसने किया? इस प्रश्न के साथ ही दूसरा प्रश्न उभरकर सामने आता है, 'क्या वीरभद्र तिवारी निष्कलंक है?'

आज़ाद के प्रति विश्वासघात करने का सन्देह अनेक बार वीरभद्र तिवारी पर आरोपित किया गया है!

इस विषय में आज़ाद के निकटतम साथी और यशपाल की विस्तृत

टीका द्रष्टव्य है।

'विभिन्न पत्रों में प्रसिद्ध क्रान्तिकारी श्री वैशम्पायन का एक वक्तव्य —'क्या वीरभद्र निष्कलंक है?' शीर्षक से प्रकाशित हुआ है,··· वक्तव्य में भाई आज़ाद को पुलिस की गोली का निशाना बनवा देने का आरोप, वीरभद्र पर लगाया गया है। हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातन्त्र सेना से और शहीद आज़ाद से मेरा भी सम्पर्क रहा है। मैं हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातन्त्र सेना की सेन्ट्रल कमेटी का सदस्य रहा हूं, श्री वैशम्पायन नही।···श्री वैशम्पायन के वक्तव्य का प्रकट प्रयोजन भाई आज़ाद के प्रति विश्वासघात सम्बन्धित परिस्थितियों और तथ्यों के आधार पर इस विषय में संशय और भ्रम दूर करना है, परन्तु वक्तव्य का अर्थ विपरीत निकलता है। संशय और भ्रम दूर करने के कार्य में कुछ सहयोग देने का उत्तरदायित्व मुझ पर भी है।'

श्री वीरभद्र पर आरोप है—'दल में सम्मिलित रहकर पुलिस को खबर देते रहते थे। वीरभद्र काकोरी केस में भी गिरफ्तार हुए थे और उस समय भी उन्होंने पुलिस को दल-भेद बताकर दल को धोखा दिया था।···स्पष्टीकरण कुछ ब्यौरों से ही उचित होगा। श्री वैशम्पायन का वक्तव्य ध्यान और विवेक से पढ़ने पर स्पष्ट हो जाता है कि लेखक ने वीरभद्रजी पर आरोप, तथ्य प्रस्तुत करके नही केवल हुई परिस्थितियों और बातों के आधार पर अनुमान से किया है।

वैशम्पायन 27 फरवरी, 1931 को सुबह आज़ाद भाई की शहादत से 15-16 दिन पूर्व गिरफ्तार हो चुके थे। श्री सुरेन्द्र पांडेय और मैं एल्फ्रेड पार्क में आज़ाद की शहादत से आधे घंटे से भी कम समय तक (उनके पार्क में जाते समय तक) उनके साथ थे। वैशम्पायन की गिरफ्तारी का समाचार हम लोगों को इलाहाबाद में ही मिला था। इस समाचार से आज़ाद और हम लोगों ने भी बहुत आघात अनुभव किया था, कारण कि वैशम्पायन बहुत ही विश्वस्त साथी थे।···मुझे खूब याद है वैशम्पायन की गिरफ्तारी का समाचार पाकर आज़ाद कुछ क्षण स्तब्ध रह गये, फिर उनके मुख से निकल गया—'साले सब जनखे

हैं। पुलिस को देखकर सिट्टी-पिट्टी भूल हथियार डाल देते हैं।' आज़ाद बेतकल्लुफी या क्षोभ में प्रायः ही ऐसे बोल जाते थे।…

दल और दल के नेता के प्रति विश्वासघात का आरोप बहुत उत्तर-दायित्व की और गम्भीर बात है। वायसराय की ट्रेन के नीचे बम विस्फोट का समय 23 दिसम्बर 1929 प्रायः निश्चित किया गया था।

(इस योजना के वाद-विवाद में वीरभद्र तिवारी भी शामिल थे)…28 सितम्बर, प्रातः 6 बजे नई दिल्ली स्टेशन से तीन-चार मील पूर्व पुराने किले के समीप मैंने स्पेशल ट्रेन के नीचे विस्फोट कर दिया।

इस प्रसंग के उल्लेख का प्रयोजन है कि विस्फोट से उन्नीस-बीस घण्टे पूर्व वीरभद्र इस विषय में जानते थे और विस्फोट के समय और स्थान का निश्चित ज्ञान न होने पर भी इसका आभास उन्हें जरूर था।

यदि वीरभद्र पुलिस के इन्फारमर थे तो अपनी कारगुजारी दिखाने का यह मामूली मौका न था। इस काम के लिए उनके पास उन्नीस-बीस घण्टे का समय भी था।…

दूसरा तथ्य—गांधीजी ने लाहौर कांग्रेस में बहुत विरोध के बावजूद बहुत आग्रह से, नाममात्र के बहुमत से वायसराय पर कायरतापूर्ण और जघन्य आक्रमण की निन्दा का प्रस्ताव पास करा लिया था।

हमारे इस कार्य के विरोध और निन्दा के लिए गांधीजी ने एक वक्तव्य अपने पत्र 'यंग इंडिया' में भी 'कल्ट आफ दि बम' शीर्षक से प्रकाशित किया था, तब हम लोग लखनऊ में थे। भगवती भाई और मैंने इस लेख का एक उत्तर 'फिलासफी ऑफ दि बम' शीर्षक से लिखा था। आज़ाद ने भी इसे खूब पसन्द किया था।

अब प्रश्न था इस पत्र को हजारों की संख्या में छपवाने और इसका वितरण देश-भर उत्तर भारत में—एक ही समय कर सकने

का।

लखनऊ, कानपुर में या अन्यत्र भी हम लोगों के पास कोई सूत्र इसे छपवा सकने का नहीं था। आज़ाद को स्वयं काकोरी केस में और लाहौर षड्यन्त्र केस में फरार होने के कारण इधर-उधर घूमने की स्वतन्त्रता नहीं थी। पत्र के गुप्त मुद्रण का काम उन्होंने वीरभद्र को ही सौंपा था और उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल तक उसके वितरण की व्यवस्था भी वीरभद्र के सहयोग से बनी थी। यह पत्र कलकत्ता से पेशावर और बम्बई तक बांट दिया जा सकता था। इसका सूत्र ढूंढ़ने की सिर-तोड़ कोशिश की गई थी। मेरे विचार में इस विषय में पुलिस को समाचार दे सकना, सरकार की नजर में वीरभद्र की सराहनीय कार-गुजारी हो सकती थी।

आज़ाद द्वारा दल के प्रांतीय संगठन के समय वीरभद्र को उत्तर-प्रदेश का इंचार्ज बनाया गया था। इसी बैठक में वीरभद्र ने अवस्थी और कैलाशपति के समर्थन से प्रस्ताव किया था कि दल को पुनः विशृंखल होने से बचाने के लिए प्रांतों के इंचार्ज व्यक्ति और मुख्य नेता भविष्य में 'ऐक्शन' (सशस्त्र आक्रमण कार्य में) भाग न लें···भगवती भाई और आज़ाद ने इसका विरोध किया। वीरभद्र ने अपने प्रस्ताव पर आग्रह न किया···यदि वीरभद्र पुलिस के इन्फारमर होते तो उनके लिए भैया आज़ाद, भगवती भाई और मुझे एक ही साथ गिरफ्तार करवा सकने का बहुत अच्छा मौका था।

वीरभद्र ने प्रति आज़ाद या दल की नाराजगी का सूत्रपात जुलाई-अगस्त 1930 में हुआ। दल की केन्द्रीय कमेटी द्वारा यशपाल के प्राण-दण्ड के लिए गोली मार देने के निर्णय और इस काम के लिए नियुक्त साथियों के असफल रह जाने पर···। मुझे अपने विरुद्ध निर्णय का भेद मालूम हो गया था। यह कह देना आवश्यक है कि जिस सेन्ट्रल कमेटी में मुझे दण्ड देने का निर्णय किया गया था, उसकी पूर्व सूचना मुझे न दी गई थी।

मुझ पर आरोप था—मैं आज़ाद को मूर्ख और बैलबुद्धि कहता

हूं और मुखिया बन जाने के लिए अपना पृथक दल बना रहा हूं। मैं विलासी और चरित्रहीन हो गया हूं। दल का धन अपनी मौज के लिए उड़ाता हूं।

मुझे कानपुर में ही मालूम हो गया था कि केन्द्रीय कमेटी ने वीरभद्र तिवारी और सद्‌गुरुशरण अवस्थी ने आरोपों की पूरी तहकीकात किए बिना ऐसे निर्णय का विरोध किया था।···

कुछ साथियों ने मेरे विरुद्ध आज़ाद के कान भी खूब भर दिए थे। आज़ाद के कान कुछ कच्चे भी थे और इतने सरल और निश्छल कि दूसरे का छल भांप सकना भी कठिन था।

तीन साथी इस निर्णय को तुरन्त कार्यान्वित कराने के पक्ष में थे।

आज़ाद बहुत बौखलाए हुए थे, वीरभद्र और अवस्थी मौन रह गए। उनके मौन को भी सम्मतिसूचक मान लिया गया।

कानपुर स्टेशन पर मुझे योजनानुसार गाइड न मिल सका। मैं नगर में केवल एकसूत्र, वीरभद्र का मकान जानता था। इसके अतिरिक्त वीरभद्र और अवस्थी पर कानपुर का उत्तरदायित्व होने के कारण निर्णय को पूरा करने की योजना का भार भी उन्हीं पर था।

मैंने सुशीला दीदी और खियालीराम गुप्त की मार्फत आज़ाद से भेंट का प्रयत्न किया। वे लोग निर्णय सुनकर स्तब्ध रह गए थे। मेरी शर्त यह भी थी कि आज़ाद से अकेले में नहीं मिलूंगा। सुशीला दीदी और खियालीराम गुप्त साथ रहें।···

भेंट के समय आज़ाद बहुत ही क्षुब्ध थे। कानपुर और लाहौर में साथियों द्वारा तथाकथित विश्वासघात के कारण और मेरे प्रति भी।

अब उनके कान भर दिए थे—यशपाल कहता है, आज़ाद महामूर्ख है, तानाशाह बन बैठा है, मैं आज़ाद को गोली मार दूंगा। यह कौन होता है ऐसा निर्णय करने वाला? भेंट के समय मैं और आज़ाद दोनों सशस्त्र थे। सुशीला दीदी और खियालीरामजी निःशस्त्र। बहुत गरमा-गरमी भी हुई।

सुशीला दीदी और खियालीरामजी का एक तर्क था—जिस व्यक्ति ने अपने विरुद्ध मृत्यु का निर्णय और प्रयत्न जान लेने पर भी खुद को पुलिस के हाथ सौंपकर पुलिस की शरण नहीं ली, साहस से तुम्हारे पास ही आया, उससे अधिक विश्वस्त कौन हो सकता है ? सुलह-सफाई हो गई, परन्तु आज़ाद अब और क्षुब्ध हो गए थे ?

कुछ लोगों ने उन्हें गलत निर्णय कराने के लिए धोखा दिया और कुछ ने निर्णय की सूचना मुझे देकर तथाकथित विश्वासघात किया था। …आज़ाद का प्रबल आग्रह था कि मैं सूचना देने वाले साथियों के नाम बता दूं।

मैंने कह दिया—'सब कुछ जान कर भी मुझे शूट करना चाहते हो तो मैं अपना पिस्तौल तुम्हें दिए जाता हूं, परन्तु दल के हित और न्याय की रक्षा के लिए मैं सूचना देने वाले के साथ विश्वासघात नहीं कर सकता।'

आज़ाद ने सैन्ट्रल कमेटी के कुछ साथियों को बुलाकर सैन्ट्रल कमेटी तोड़ दी। विभिन्न प्रान्तों के इंचार्जों में हथियार बांट दिए। अब उन्होंने कहा—मुझे अब किसी से लेना-देना नहीं है, जो चाहो करो। नहीं जानता कौन कुछ करेगा, पर सोहन (यशपाल) जरूर कुछ करेगा। मुझे कुछ अधिक भाग अपने निर्णय से दिया। इसके बाद मैं और प्रकाशवतीजी आज़ाद के सुझाव से कानपुर में रहने लगे। आज़ाद तब तक हमारे साथ रहते थे।

वीरभद्र के प्रति आज़ाद के दिल में क्षोभ और अविश्वास पनप रहा था। बीच-बीच मे वीरभद्र कुछ ऐसा व्यवहार कर रहे थे जो सन्देह और अविश्वास को निरन्तर मजबूत करता जा रहा था।

इस प्रसंग में यशपालजी आगे कहते हैं—'उस समय दल की आर्थिक स्थिति बहुत खराब थी। महीने-डेढ़ महीने में 'मनी ऐक्शन डकैती' की योजनायें कानपुर में और आस-पास वीरभद्र के सहयोग से बनाई जा चुकी थीं। आज़ाद के अनुसार वीरभद्र योजना के लिए अनुमति और साथ चलने का वायदा कर लेता था, ऐन समय पर

काम में कोई बाधा उपस्थित कर देता या गायब हो जाता था।...
आज़ाद, वीरभद्र को एक ऐक्शन में सम्मिलित करके या तो उसके साहस की परीक्षा चाहते थे या उसे फरार हो जाने के लिए मजबूर कर उसकी ढुलमुल स्थिति समाप्त कर देना चाहते थे। आज़ाद का खयाल था—अब वीरभद्र में कायरता आ गई।

यशपाल ने अपनी विस्तृत लेखमाला (चन्द्रशेखर आज़ाद के साथ विश्वासघात किसने किया था?) में अनेक प्रसंगों और घटनाओं का उल्लेख करते हुए वीरभद्र तिवारी के विश्वासघाती होने की संभावना-आशंका के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण तथ्यों पर प्रकाश डाला है और लेखमाला की अन्तिम किस्त में उन्होंने अत्यन्त खोजपूर्ण स्पष्टीकरण दिया है।

श्री वैशम्पायन ने श्री वीरभद्र पर सन्देह के कारण-स्वरूप जिन परिस्थितियों का उल्लेख अपने वक्तव्य में किया है, उनका स्पष्टीकरण वीरभद्रजी को ही करना चाहिए, परन्तु अन्य तटस्थ व्यक्ति भी उन पर विचार कर सकते हैं। इनमें से विशेष महत्त्वपूर्ण परिस्थिति है—आज़ाद की शहादत की सुबह वीरभद्र के इलाहाबाद में उपस्थित होने की। इसके लिए वैशम्पायन ने श्री रामचन्द्र मुसद्दी के एक लेख का हवाला दिया है। यह सही है कि मुसद्दी आज़ाद और दल के विश्वस्त थे और उन्हें हम लोगों की गतिविधियों का भी कुछ ज्ञान जब-तब रहता था।

मुसद्दीजी का कहना है कि 26 फरवरी 1931 की आधी रात कानपुर से उनके रिश्ते की एक बरात मिर्जापुर जा रही थी, उन्हें स्टेशन पर वीरभद्र कुछ संदिग्ध-सी सहमी-सी अवस्था में दिखाई दे गए। मुसद्दीजी ने अनुरोध किया, गाड़ी से चल रहे हो तो बरात में जरूर साथ दो। वीरभद्र बरातियों के कम्पार्टमेंट में बैठ गये, परन्तु प्रातः छः बजे इलाहाबाद स्टेशन पर चुपचाप बिना कुछ कहे गाड़ी से खिसक गए।

वैशम्पायन को यह भी मालूम है कि 27 फरवरी प्रातः वीरभद्र

कटरा इलाहाबाद के एक तिमंजिले मकान में थे। इसके आगे उन्हें और प्रमाण की जरूरत नहीं। वीरभद्र का कहना कि मुसद्दीजी का वर्णन ठीक है, परन्तु उस समय उनकी स्थिति क्या थी ?

दो ही सप्ताह पूर्व वैशम्पायन गिरफ्तार हो चुके थे। उन्हें विश्वास था वैशम्पायन ने भय से सब बक दिया है। इतने दिन वे अपने घर से बाहर और परिचितों से बचकर कानपुर में समय काट रहे थे। दल के साथियों की नाराजगी की आशंका। ऐसी स्थिति में वे मुसद्दीजी के रिश्ते की बरात के जशन में उत्साह से भाग लेते या अपनी जान बचाने की कोशिश करते। ऐसी स्थिति का मैं निजी अनुभव से अनुमान कर सकता हूं।

वीरभद्र का कहना है कि मुझे वैशम्पायन द्वारा भेजा सन्देश भी निष्फल रहने पर वे श्री सहगल की मार्फत आज़ाद से सम्पर्क स्थापित कर सकने के लिए इलाहाबाद गए थे। जिस समय सुरेन्द्र पांडे और मैं कटरे के मकान से चौक जाने के लिए साइकिलों पर निकले, आज़ाद भी साइकिल पर ही हो लिए—हमें भी उधर ही जाना है।

एल्फ्रेड पार्क के गेट के समीप सुखदेव् राज दूसरी ओर से आता दिखाई दिया। आज़ाद और राज पार्क के भीतर चले गए, मैं और पाण्डेजी चौक की ओर। आज़ाद ने हमें पहले नहीं बताया था कि वे सुखदेव राज से मिलने जा रहे हैं, क्योंकि तब भी राज का और मेरा मन-मुटाव चल रहा था। अस्तु मान लिया कि वीरभद्र आजाद की शहादत से तीन घण्टे पूर्व इलाहाबाद कटरे में मौजूद थे, परन्तु वीरभद्र के पास यह जान लेने या अनुमान कर लेने का क्या सूत्र था कि आजाद सवा नौ-साढ़े नौ बजे एल्फ्रेड पार्क में जायेंगे और विस्तृत पार्क के किस भाग में बैठेंगे।

यह जानकारी हो सकती थी केवल राज को। आजाद उसी के पूर्व निश्चित स्थान और समय पर गए थे। या हो सकता था आजाद और राज के बीच संवादिया हो। आजाद की शहादत के बाद सुखदेव राज ने मुझसे और कुछ अन्य लोगों से भी जिक्र किया था कि

पार्क में वृक्ष के नीचे बैठते समय आजाद ने उससे कहा था।

(ढाई-तीन सौ गज दूर) शायद वीरभद्र जा रहा है ? उसने हमें देखा तो नहीं ?' राज की इस बात की असंगति पर मैं सिंहावलोकन में विचार कर चुका हूं।

अब कुछ और सूचनाओं या तथ्यों पर गौर किया जाए। पुलिस और सी० आई० डी० रिटायर्ड और वर्तमान ऊंचे अधिकारियों में भी मेरे कई पाठक हैं। उनमें से कई लखनऊ आए, मेरा पता मालूम हो जाने पर मिलने भी आ जाते हैं। मेरा मकान पी० ए० सी० पुलिस रेडियो के मुख्य दफ्तर के समीप उनके रास्ते में पड़ जाता है। तीन वर्ष पूर्व एक ऐसे ही सज्जन आ पहुंचे थे। उन्होंने 'सिंहावलोकन' पढ़ा था।

आज़ाद की शहादत की चर्चा चलने पर बोले, 'वीरभद्र पर संदेह मिथ्या है। कुछ पुलिस रिकार्ड मौजूद हैं। अवसरवश उनकी निगाह में भी पड़ चुके हैं। बताया—आज़ाद के सम्बन्ध में पुलिस को सूचना दी थी, आज़ाद के एक विश्वस्त व्यक्ति ने उस समय इलाहाबाद कार्पेण्टरी स्कूल का एक लड़का वर्मा उर्फ कोब्र पुलिस का वेतन भोगी इनफार्मर था और दल में मिल रहा था।

एक रिटायर्ड पुलिस अफसर मकान के सामने से गुजरते हुए भीतर आ गए। मेरी बहुत-सी पुस्तकों के साथ सिंहावलोकन भी पढ़ चुके थे। आज़ाद की शहादत और मेरी गिरफ्तारी के दिनों में भी वे एक जूनियर पद पर इलाहाबाद में ही थे। अपने नाम का उल्लेख, बयान का ज़िक्र किया, उनके विचार में बयान अक्षरश: सही था।

कुछ और भी बातें उन्होंने बताईं—

आज़ाद पार्क में हैं, इस विषय में नॉट बाबर को निश्चित सूचना नहीं, केवल संदेह की सूचना थी। घटना इस प्रकार थी।

उन दिनों पुलिस इन्स्पेक्टर विश्वेश्वरसिंह और जूनियर कोर्ट इन्स्पेक्टर डालचन्द इलाहाबाद के कटरे के समीप ही रहते थे। दोनों नियमित रूप से साथ-साथ भ्रमण के लिए पार्क में से काफी दूर तक जाते थे। और उसी रास्ते लौटते थे।

27 फरवरी प्रातः वे लोग भ्रमण से लौट रहे थे तो पार्क मे एक स्थान पर पहुंचकर विश्वेश्वरसिंह कुछ ठिठक गए।

'क्या है ?' डालचन्द ने प्रश्न किया।

उत्तर मिला, 'उस पेड़ के नीचे बैठे आदमियों में मोटा आदमी आज़ाद जान पड़ता है !'

विश्वेश्वरसिंह को सन्देह मात्र था, निश्चय नही। फरार क्रान्तिकारियों की गिरफ्तारी के लिए जगह-जगह लगाए इश्तिहारों में आज़ाद का हुलिया दिया जा चुका था। इसके अतिरिक्त घटना से दस वर्ष पूर्व 1921 मे सत्याग्रह आंदोलन के समय विश्वेश्वरसिंह बनारस में ही सब इन्स्पेक्टर थे। आजाद ने चौदह वर्ष की किशोर अवस्था मे ही सत्याग्रह मे भाग लिया था।

उस समय उनका कद-कामत ऐसा था कि सत्याग्रह में गिरफ्तार किए जाने पर अदालत ले जाते समय हथकड़ियां पहनाई गईं तो वे बहुत ढीली चूड़ियों की तरह हाथों से निकल जाती थीं। परन्तु अदालत में आज़ाद ने मजिस्ट्रेट को बहुत करारे जवाब दिए थे और मजिस्ट्रेट बहुत खीझ गया था।

आयु कम होने के कारण उन्हें कानून जेल को नही भेज सकता था। मजिस्ट्रेट ने उन्हे जेल ले जाकर चौदह बेंत लगाकर छोड़ देने की सजा दे दी थी। थाने मे बेंत पड़ने और अदालती हुक्म से जेल में बेंत लगाए जाने मे बहुत अन्तर होता है। जेल में बेंत अपराधी को हाथ-पावों से टिकटी पर बांधकर जेल में जल्लाद द्वारा पूरी शक्ति से लगाए जाते हैं। पीठ से जांघों तक खाल फट जाती है। जिस पर इंजेक्शन से बचाने के लिए मरहमपट्टी करना आवश्यक होता है।

आज़ाद ने यह मार हाय और उफ न कर वन्देमातरम् और भारत माता की जय के नारे लगाकर सह ली थी। वे नगर-भर की नजरो में चढ़ गए थे। स्थानीय पुलिस सब-इन्स्पेक्टर उन्हें कैसे न पहचानता, परन्तु इस बीच दस वर्ष का समय बीत चुका था, किशोरावस्था से भरी जवानी तक आते आदमी का शरीर और चेहरा-मोहरा काफी बदल

जाते हैं, इसलिए विश्वेश्वर सिंह ने डालचन्द से अनुरोध किया—'मैं इन लोगों पर नजर रखूंगा। तुम तुरन्त नॉट बाबर के बंगले पर जाकर समाचार दो !'

घटना की सांझ नॉट बाबर ने पुलिस रिपोर्ट में लिखा था, 'मुझे इन्स्पेक्टर विश्वेश्वर सिंह से संवाद मिला कि उसने फरार क्रान्तिकारी चन्द्रशेखर आज़ाद के हुलिए से मिलते-जुलते व्यक्ति को देखा है। मैं तुरन्त अपने कास्टेबलों और विश्वेश्वर सिंह के संवादिया (डालचन्द) को अपनी कार में लेकर तुरन्त पार्क में पहुंचा।

संवादिया द्वारा बताए स्थान पर विश्वेश्वर सिंह न दिखाई दिया। परन्तु संवादिया द्वारा बताए स्थान, कैनिंग रोड से पब्लिक लाइब्रेरी जाने वाली सड़क के समीप एक पेड़ के नीचे दो व्यक्ति बैठे थे। मैं उनके सामने गाड़ी रोक कर उतर गया। पिस्तौल हाथ में थी, 'तुम कौन हो ?' पूछने पर दोनों ने पिस्तौल निकाल लिए। मोटे व्यक्ति को अपनी ओर निशाना करते देख मैंने गोली चला दी।

मेरी गोली उसकी जांघ में लगी, उसकी गोली मेरी बांह में लगी। मेरे हाथ से पिस्तौल गिर गया। मैं पिस्तौल उठाकर समीप पेड़ की आड़ में हो गोली चलाने लगा। मोटा व्यक्ति भी पेड की आड़ में होकर गोली चला रहा था। तब तक विश्वेश्वर सिंह एक झाड़ी की आड़ से निकल आया। मोटे व्यक्ति की एक गोली विश्वेश्वर सिंह के जबड़े पर लगी। समीप से जाते एक लाइसेंस प्राप्त व्यक्ति ने अपनी बन्दूक विश्वेश्वरसिंह को दे दी थी, परन्तु वन्दूक न चला सका, तब तक एक और सशस्त्र कांस्टेबल आ गया।

नॉट बाबर का कहना है—'आज़ाद उसकी अन्तिम गोली से शहीद हुए। उसकी यह बात उस समय दूर से लड़ाई देखने वालों तथा अन्य प्रमाणों से सत्य नहीं उतरती। आज़ाद ने अपनी अन्तिम गोली स्वयं अपनी कनपटी पर मार ली थी। इस विवेचन का ब्यौरा सिंहावलोकन में मौजूद है।

आज़ाद के शहीद हो जाने पर भी नॉट बाबर, अधिकांश पुलिस

और जनता को भी सांझ तक निश्चय न हो पाया था कि पुलिस से लड़ाई में खेल रहा साहसी व्यक्ति क्रान्तिकारी ही था। फोन और तार द्वारा बनारस और झांसी से सी० आई० डी० के ऐसे लोगों के पहचान लेने पर और तहकीकात हो जाने पर ही आज़ाद का शव पुलिस ने कुछ राजनैतिक लोगों की मांग पर उन्हें सौंप दिया था और पुलिस का बयान शहीद जख्मी आज़ाद का फोटो सहित समाचार पत्रों में प्रकाशित हुआ था। रिटायर्ड पुलिस अधिकारी के अनुसार नॉट बाबर ने यह रिपोर्ट 27 फरवरी संध्या कर्नलगंज (इलाहाबाद) के थाने में लिखी थी। एल्फ्रेड पार्क के पास यही थाना था।

इन तथ्यों से स्पष्ट है कि एल्फ्रेड पार्क में आज़ाद की उपस्थिति की निश्चित सूचना किसी व्यक्ति ने नहीं दी थी।

इस विषय में तेरह-चौदह वर्ष पूर्व ही सिंहावलोकन लिख चुका है। कुछ प्रसंगों की जानकारी बाद में हो सकी है। तथ्य प्रकट हो जाने पर भी शंका और अनुमान-मात्र के आधार पर आरोप दुराग्रह मात्र है। श्री वैशम्पायन की कुछ आनुसंगिक शंकाओं का स्पष्टीकरण में नहीं कर सकूंगा। यह बहुत उचित होगा कि ऐतिहासिक सत्य के निरूपण के लिए श्री वीरभद्र तिवारी स्वयं ही वैशम्पायन के वक्तव्य के सम्बन्ध में स्पष्टीकरण करें।

'धर्मयुग' से साभार —श्री यशपाल

श्री लल्लन प्रसाद व्यास के लेख—'चन्द्रशेखर आज़ाद के विरुद्ध पुलिस को सूचना किसने दी?' में भी श्री वीरभद्र तिवारी के प्रति की गई शंकाओं और अनुमानों का स्पष्टीकरण किया गया है—

'श्री वीरभद्र तिवारी पर इस संदेह के कई कारण थे—स्वयं आज़ाद के मन में भी अपने इस साथी के बारे में बड़ा संदेह पैदा हो गया था। एक बार जब विशेष कारणवश आजाद ने अपने निकट के साथी यशपाल को गोली से उड़ा देने का निर्णय किया था, तब उसकी पूर्व सूचना वीरभद्र ने ही यशपाल को दी थी और उन्हें किसी अन्य स्थान पर चले जाने की सलाह दी थी।

यद्यपि बाद में फिर यशपाल, आज़ाद के विश्वासपात्र साथी बन गए थे और अन्त तक रहे भी, किन्तु यशपाल के सम्बन्धी वीरभद्र के कार्य से वे मन-ही-मन बहुत असंतुष्ट हो गए थे।

इसके साथ ही आज़ाद के नेतृत्व में दो-एक बार पार्टी ने धन की जरूरत के लिए डकैती की योजना बनाई, तब वीरभद्र ने उसका विरोध किया अथवा साथ न दिया। इसके कारण आज़ाद वीरभद्र से कुछ खिन्न हो गए थे।

इस सम्बन्ध में भी यशपाल ने अपनी पुस्तक 'सिंहावलोकन' में लिखा है—'मेरा भी अनुमान था कि वीरभद्र ऐसी कोई घटना नहीं होने देना चाहता, जिससे उस पर आंच आने का डर हो।'

'मेरा विश्वास था कि वीरभद्र तिवारी बहुत गहरी सूझ-बूझ और खूब लम्बा-तड़ंग होने के बावजूद स्वभाव से कायर था।'

इसके आगे वे लिखते हैं—'आज़ाद ने तय कर लिया कि वीरभद्र बहुत ही धूर्त और तेज आदमी है।'

'इस अवसर पर तुम मेरे साथ रहना।' मैं तैयार हो गया। यह खयाल मुझे जरूर आया कि वीरभद्र ने बहुत आड़े समय मेरी सहायता की है और मुझ पर उसका एहसान है, लेकिन दल के समक्ष वीरभद्र के उचित व्यवहार न करने के प्रमाण भी मौजूद थे।

वीरभद्र तिवारी के खिलाफ चार्जसीट में सबसे बड़ा चार्ज था, सुखदेव राज का जो पुलिस द्वारा आजाद को घेरे जाने के समय मौजूद था।

उनका कहना था कि जब आज़ाद पुलिस द्वारा घेर लिए गए, तब उन्होंने मुझसे कहा मैं तो लड़ूंगा, तुम बचने की कोशिश करो।

इसी सुखदेव राज ने यह भी बताया कि जिस समय वह और आज़ाद पार्क में पेड़ के नीचे बैठे थे, आज़ाद ने पार्क के बाहर ही सड़क की ओर संकेत कर कहा था—'जान पड़ता है कि वीरभद्र तिवारी जा रहा है। उसने हम लोगों को देखा तो नहीं?'

बाद में पार्टी के अन्दर सुखदेव राज की बहुत फजीहत की गई कि

उसने संकट में पड़ने पर अपने नेता का साथ क्यों छोड़ दिया, भले ही नेता ने उसे चले जाने को कहा हो।

उसी वर्ष सुखदेव राज ने इस प्रकार की एक और कमजोरी का परिचय दिया। जब वह लाहौर के शालीमार बाग में अपने एक साथी सहित घेर लिया गया।

उस समय यद्यपि उसका दूसरा साथी जगदीश लड़ता हुआ शहीद हुआ, तथापि उसने तत्काल अपनी पिस्तौल फेंककर पुलिस के सामने आत्मसमर्पण कर दिया।

वीरभद्र के सम्बन्ध में आज़ाद तथा अन्य साथियों के संदेह का एक और भी कारण था, जिसकी ओर यशपाल ने अपनी उक्त पुस्तक मे चर्चा की है।

वे लिखते हैं—(मुखबिर) कैलाशपति से परिचित अनेक लोगों के गिरफ्तार हो जाने के बाद भी वीरभद्र तिवारी के खिलाफ कोई कार्यवाही क्यों नहीं हुई ?

वीरभद्र अब भी श्रद्धानन्द पार्क में अपने मकान में ही रहता था और बाजार में जहां-तहां घूमता भी दिखाई दे जाता था। वीरभद्र खुफिया पुलिस के इंस्पेक्टर पण्डित शम्भूनाथ का केवल पड़ोसी ही नहीं था, बल्कि ऐसी धारणा थी कि दोनों परिवारों में काफी सौहार्द सम्बन्ध भी था।

आज़ाद के मन में यह संदेह हो गया था कि वीरभद्र विश्वासघाती है।

इस प्रकार वीरभद्र तिवारी के माथे पर साफ-साफ यह कलंक का टीका लग गया कि उन्हीं के कारण पुलिस को आज़ाद की सूचना मिली। इसके बाद ही उन पर विश्वासघात का दण्ड देने के लिए विभिन्न अवसरों पर गोलियां चलाई गईं।

धीरे-धीरे इस घटना को 34-35 वर्ष बीत गए और इसी बीच देश भी आज़ाद हो गया। बहुत-से लोग यह भूल गए कि वीरभद्र तिवारी अब जिन्दा है या नही।

एक दिन मुझे श्री वीरभद्र तिवारी का एक पत्र मिला। लिखा था वह मुझसे मिलना चाहते है। मैंने उनको लिखा कि, 'समय मिलने पर मैं स्वयं उनके पास जाकर भेंट करूंगा !'

और भेंट होने पर…।

वीरभद्र तिवारी ने स्पष्टीकरण देते हुए कहा—'मेरे लिए यह दूसरे रूप में एक अविस्मरणीय संयोग था। मैं जेल से निकलते ही आज़ाद से मिलने के लिए छटपटा रहा था। सितम्बर 1930 में नमक सत्याग्रह के सिलसिले में मैं जेल में जा रहा था। कानपुर मे कच्छी की दुकान पर आज़ाद की डकैती योजना का मैं विरोधी था, इसलिए मेरा अचानक जेल चले जाना उन्हें बहुत अखरा।

यशपाल की हत्या को टालने और अन्ततः दिल्ली में अन्य साथियों के समक्ष आक्रोश में अपने इस कार्य के अनौचित्य पर लज्जित होने के कारण उनका क्रोध मुझ पर आ बरसा। उनका जब दमन हुआ, तब कहीं डकैती योजना पर वे तुल गए, अतः मेरा जेल जाना उन्हें पूर्व आयोजित कार्य जंचा। मेरी अनुपस्थिति का लाभ उठाकर उनके पुराने साथी सुरेन्द्र पांडे और उनके ग्रुप के सदस्य, जिनसे उन्होंने मेरे रहते हुए सम्पर्क तोड़ लिया था, फिर उनसे हिल-मिल गए।

वे मेरे हाथों में पुनः नेतृत्व आ जाने के कारण मुझसे अकारण मन-ही-मन विद्वेष रखते थे। उन्होंने मेरे खिलाफ उनके सन्देह और रोष को इतना भड़का दिया था कि यशपाल की तरह अब मेरी हत्या पर भी उतारू थे।

मैं अजीब उलझन में था कि करूं तो क्या करूं। ऐसे ही समय में अनायास यशपाल से स्टेशन पर भेंट हो गई। उन्होंने आज़ाद की मनः-स्थिति मुझे बताई कि किस हद तक वे मुझसे रुष्ट हैं। फिर भी मुझे अपने पर विश्वास था कि मुझसे भेंट होते ही उनका रोष मैं दबा सकूंगा। यह नहीं हो सकता कि मैं मिलने जाऊं और देखते ही वे मुझे गोली मार दें।

आखिर कुछ बात करेंगे ही। मुझे उनके सन्देह को दूर करने का

मौका मिलेगा। यशपाल से मिलते ही वे पानी-पानी हो गए। मैं भी सन्देह और अविश्वास को अवश्य दूर कर सकूंगा।

24 फरवरी को श्री वैशम्पायन की गिरफ्तारी के बाद मुझे मालूम हुआ कि उन्होंने वैशम्पायन को मुझे इलाहाबाद ले चलने के लिए भेजा था। आज़ाद ने उन्हें खासतौर पर भेजा था, मेरी उनसे भेंट करने की आतुरता-भरा पत्र भी उन्हें मिल चुका था। वैशम्पायन की गिरफ्तारी के बाद 21 या 22 फरवरी को शिवचरण गिरफ्तार हो गया। इन गिरफ्तारियों के शुरू होते ही मैं भी भूमिगत हो गया था और पुलिस से छिप-छिपकर रहने लगा था।

मुझे यह विदित था कि इलाहाबाद में वे कहां हैं। मेरा यह अनुमान था कि 'चांद' संपादक रामरिख सिंह सहगल के द्वारा मेरी उनसे भेंट हो जाएगी, अन्ततः 26 फरवरी को रात्रि की ट्रेन से मैं रवाना हुआ। लाख छिपकर जाते हुए भी ऐसा योगायोग कि मुसद्दी जी के पुत्र की बारात स्टेशन पर मिल गई और उन्हीं के साथ हो लिया और इलाहाबाद आते ही उतर गया।

जीवन का एक ऐसा क्रूर संयोग कि मैं पहले उनसे मिल सकूं, वे एल्फ्रेड पार्क में पुलिस से जूझते हुए वीरगति पा गए। वे तो मरकर अमर हो गए, किन्तु मैं जो उन्हें बचाने चला था, उनकी मृत्यु का कलंक सहन करते हुए आज जीवित्मृत हूं। किसे दोष दूं? साथियों का मतिविभ्रम या दैवी योग! मेरे लिए तो यह अविस्मरणीय क्रूरतम संयोग ही है।

खेद केवल इतना है कि किसी भी विज्ञ लेखक, सम्पादक, इतिहास-वेत्ता के अफवाहों के आधार पर मुझे दोषी ठहराते हुए यह साधारण सौजन्य भी न दिखाया कि मुझसे पूछते तो कि इस कथित आरोप के लिए मुझे क्या कहना है?'

साप्ताहिक हिन्दुस्तान
से साभार

—श्री लल्लनप्रसाद व्यास

आज़ाद : साथियों के आइने में

आज़ाद विचारक नहीं, सेनापति था। जिन विचारों या उद्देश्यों को लेकर 'हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातन्त्र सेना' ने जान-जोखिम का मार्ग चुना था, उस कार्यक्रम को पूरा करने के लिए आज़ाद ने कोई कसर न छोड़ी। उसका काम विचारों का विश्लेषण नहीं था, विचारों को लेकर चलने वाले सैनिकों का संचालन करना था।

—श्री यशपाल

आज़ाद सदा संकट के सभी कामों में आगे रहते थे। दल के नेता के रूप में हम सभी लोग उनको सुरक्षित रखना चाहते थे। वे काकोरी केस के फरार अभियुक्त थे, दल के नेता थे। उनको पकड़ने के लिए सरकार ने हजारों रुपये के इनाम घोषित कर रखे थे, अतएव वे पार्टी के नेता ही नहीं, पार्टी की प्रतिष्ठा भी थे। अतएव यह स्वाभाविक ही था कि मामूली छोटे-मोटे खतरे के कामों में उनका शरीक होना ठीक नहीं समझा जाता था, मगर आज़ाद को अलग सुरक्षित बैठे रहने में चैन नहीं पड़ता था।

—'यश की धरोहर' से

'यदि उनके कपड़े फटे हैं या मैले हैं और किसी मित्र ने उन्हें धोती, कुर्ता दे दिया तो वे पुराने कपड़े वहीं छोड़कर चल देते थे। पर कोट चाहे मैला या फटा हो, उसे नहीं बदलते थे उनका अपना बिस्तर भी न

था। खाने के समय ऐसा कभी नही हुआ कि दूसरों की चिन्ता किए बिना आज़ाद स्वयं खा चुके हों।'

—दुर्गा भाभी

एक बार हम जगली सूअरों के शिकार के लिए ओरछा के जगल में जाने वाले थे कि लंगोटी बाधे हृष्ट-पुष्ट साधुजी ने हम से कहा, 'दीवान साहब, हमको भी शिकार में साथ लेते चलिए।'

हमने उनसे कहा, 'पुजारीजी, आप हमारे साथ चलकर क्या करेंगे ?'

उन साधुजी ने कहा, 'हमें अगर आप एक बन्दूक दे दें तो हम अपने भाग्य को आजमा कर देखेंगे।'

मुझे साधुजी की इस बात पर हंसी आ गई और मजाक-मजाक में मैंने उन्हें एक बन्दूक दे दी और अपने साथ ले लिया।

हम लोग शिकार के लिए अलग-अलग जगहों पर बैठ गए और दिल्लगी के लिए साधुजी को सबसे दूर बिठा दिया।

एक मजबूत अकेला 'जंगली इक्का' सुअर, जो बहुत खतरनाक होता है, निकला। उस पर मैंने और मेरे साथियों ने गोलियां चलाई पर वे निशाने से दूर चली गई।

इतने में हमने क्या देखा कि साधूजी की एक गोली से वह भागता हुआ सूअर धराशायी हो गया।

जब शिकारी पार्टी जंगल से लौट रही थी तो मैंने साधूजी के पास अकेले में जाकर पूछा, 'आप कोरमकोर साधू तो नहीं है, अपना भेद हमें बताइए।'

साधूजी ने कहा, 'भेद की कोई बात हो तो हम बतलाएं, हम तो मन्दिर के पुजारी हैं।'

वे साधूजी थे, आज़ाद !

माता-पिता को आर्थिक सहायता देने की बात पर आज़ाद झुंझलाकर आवेश में कह पड़े, 'क्या मैं अपने माता-पिता के लिए भीख

मांगता हूं ? यह रुपया भी मैं अपनी जान पर खेल कर लाया हूं। अगर उन्हें मैं दे दू तो कोई मेरा क्या करेगा ? लेकिन मैं ऐसा नहीं कर सकता। यह पैसा केवल मातृभूमि की सेवा के लिए ही है। केवल मेरे ही माता-पिता का ध्यान रखना। मैं अगर उन्हें कष्ट में देखूंगा अथवा सुनूंगा तो पिस्तौल की दो गोलियां उनकी सेवा करने के लिए बहुत होंगी। मैं उनकी यही सेवा कर सकूगा। मेरे माता-पिता के विषय में या मुझसे अपने सम्बन्ध के विषय में किसी से कुछ कह कर अथवा लिख कर कभी किसी प्रकार का लाभ उठाने का प्रयत्न न करना।'

किसी ने छेड़ा—'पण्डितजी (आज़ाद) बुन्देलखण्ड की किसी पहाड़ी में शिकार खेलते हुए किसी मित्र बने सरकार-परस्त के विश्वास-घात से घायल होकर बेहोशी की दशा में पकड़े जाएंगे। इन्हें जंगल से सीधे झांसी के पुलिस अस्पताल में भेज दिया जाएगा और वहीं इन्हें होश आने पर पता चलेगा कि वे गिरफ्तार हो गए—सजा दफा 121 में फांसी।'

आज़ाद ने झिड़की-भरी हंसी हंसी। इस पर भगतसिह ने विनोद करते हुए कहा—'पण्डितजी, आपके लिए दो रस्सों की जरूरत पड़ेगी, एक आपके गले के लिए और दूसरा आपके इस भारी-भरकम पेट के लिए।'

आज़ाद तुरन्त हंस कर बोले—'देख, फांसी जाने का शौक मुझे नहीं है। वह तुझे मुबारक हो, रस्सा-फस्सा तुम्हारे गले के लिए है। जब तक यह बमतुलबुखारा (अपनी मौजूद पिस्तौल का नाम) मेरे पास है, किसने मां का दूध पिया जो मुझे जीवित पकड़ ले जाए!'

—डॉ० भगवानदास माहौर

एक बार भगतसिंह, विजयकुमार सिन्हा और भगवानदास माहौर में काव्य-संगीत की बारीकियों पर चर्चा हो रही थी।

मन की मौज में आकर माहौर गा उठे—'हृदय लगी, प्रेम की

बात ही निराली मनमथशर हो···।' आजाद बोले, 'क्या साला प्रेम-फ्रेम पिनपिनाता रहता है। अबे, क्यों अपना और दूसरों का मन खराब करता रहता है? कहां मिलेगा इस जिन्दगी में प्रेम-फ्रेम का अवसर? कल कहीं सड़क के किनारे पुलिस की गोली खाकर लुढ़कते नजर आएंगे। मनमथशर—फनमथशर! हमें मतलब मनमथशर से! अबे कुछ 'बम फटकर, पिस्तौल झटकर' ऐसा कुछ गा। देख मैं गाऊं अपनी एक···एक ही कविता जिसे जिन्दगी में कर जाने के लिए ही जिन्दा हूं।' और अपने गले को भारी-भरकम बनाते हुए स्वरों पर स्टीम रोलर से चलना शुरू किया—

दुश्मन की गोलियों का हम सामना करेंगे,
आजाद ही रहे हैं, आजाद ही रहेंगे।

'देख इसे कहते हैं कविता। क्या साला—हृदय लगी प्रेम की बात 'मनमथशर' पिनपिनाता रहता है। हृदय में लगेगी थिरी नॉट थिरी की एक गोली···!'

आजाद कल्पना—'हमें तो फ्रंटियर से लेकर वर्मा और नेपाल से लेकर करांची तक के हर हिन्दुस्तानी को साथ लेकर एक तगड़ी सरकार बनानी है। जब फिरंगी भाग जाएंगे तब ऐसी सरकार बनेगी और हर आदमी खुशहाल होगा।'

●●●